भरत और उनका नाट्यशास्त्र

लेखक

डा ब्रजवल्लभ मिश्र

उत्तरमध्य क्षेत्र साँस्कृतिक केन्द्र,

इलाहाबाद

भरत और उनका नाट्यशास्त्र

लेखक

डा ब्रजवल्लभ मिश्र

उत्तरमध्य क्षेत्र सॉस्कृतिक केन्द्र,

इलाहाबाद

प्रकाशक

उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र
१४- सी एस पी सिंह मार्ग
इलाहाबाद २११००१

मुद्रक

लक्ष्मी प्रिन्टिग प्रेस
डीग गेट
मथुरा २८१००१

फोटो कम्पोजिंग

लक्ष्मी प्रकाशन
सी २२ इण्डस्ट्रीयल एरिया
मथुरा

एक मात्र वितरक

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागंज नई दिल्ली - २

प्रथम संस्करण १९८८ प्रतियाँ ५,००० मूल्य तीन रुपये मात्र

BHARAT AUR UNKA NATYASHASTRA BY DR. B. V MISHRA

हमारा विचार

जिस भारतीय सस्कृति ने कभी सम्पूर्ण विश्व में अपना वर्चस्व स्थापित किया था उस संस्कृति की स्वर्णिम सम्पदा का संरक्षण प्रसारण तथा प्रचारण आज के युग की महती आवश्यकता है।

भौतिकवाद के विश्वव्यापी विकास के बाद आज सारी दुनियाँ के द्वारा पुन साँस्कृतिक मूल्यो की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। सौभाग्य की बात है कि भारत मे विषम परिस्थितियों से टकराने के बावजूद आज भी अनेक सास्कृतिक परम्पराएँ जीवित हैं और उनमें से अनेक भारतीय परम्पराएँ आधुनिक विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

नाट्यशास्त्र भारनीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ है। अत केन्द्र ने निर्णय लिया कि इस पर परिचयात्मक पुस्तक प्रकाशित की जायें। नाटयशास्त्र' पर अब तक जा कुछ लिखा गया वह विद्वानों की चर्चा तक सीमित रहा है। केन्द्र ने प्रयास किया है कि नाटयशास्त्र' की सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जावे कि वह अध्येताओ के साथ-साथ रंगकर्मियों के लिए भी उपयोगी हो।

डा0 ब्रज बल्लभ मिश्र ने हमारे आग्रह पर हमें यह पुस्तक लिखकर दी है। डा0-मिश्र का इस विषय के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों पर समान अधिकार है। यदि पाठकों तथा रंगकर्मियों को केन्द्र का यह प्रयास लाभदायक सिद्ध हुआ तो केन्द्र इसी क्रम में अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित करेगा।

हम हिन्दी के सुविज्ञ नाटककार डा0 रामकुमार वर्मा के अत्यन्त आभारी हैं। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर हमारे केन्द्र को प्रोत्साहित किया है।

१४ नवम्बर १९८८

हृदयनारायण श्रीवास्तव

आई0 ए0 एस0

निदेशक

स्वस्ति

डा0 ब्रज बल्लभ मिश्र की साहित्यिक और कलात्मक प्रतिभा का परिचय देते हुए मुझे हार्दिक पसन्नता हो रही है। डा0 मिश्र ने वर्षो की साधना से भरत के नाटय-शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया है और नाटय-शास्त्र के ३७ अध्यायों के अन्तर्गत जो नाटय विषयक विविध अवतारणायें हैं उनका सम्यक् रूप से विवेचन किया है। भरत के नाटयशास्त्र के सम्बन्ध में पाठकों के हृदय में जो अनेक भ्राँतियाँ देखने में आयीं हैं उनके निराकरण और तथ्य-सम्बन्धी समाधान उन्होंने अत्यन्त कुशलता से प्रस्तुत किये हैं।

उत्तर मध्य क्षेत्र साँस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद के निदेशक श्री हृदयनारायण-श्रीवास्तव के आग्रह पर उन्होंने नाटयशास्त्र के ५ आलेख प्रस्तुत किये हैं जिनमे नाटयशास्त्र का परिचय भरत और उनके द्वारा नाटक प्रदर्शन के प्रयोग अभिनय तथा रस और भाव विषय पर लगभग १०० पृष्ठों में अत्यन्त स्पष्टता के साथ विवेचन किया है।

इस विवेचन की प्रामाणिकता इसलिए अधिक हो जाती है कि डा0 ब्रज बल्लभ मिश्र को नाटय-कला का व्यावहारिक ज्ञान भी है। वे स्वय अभिनय करने में अत्यन्त कुशल हैं। मुझे विश्वास है कि इन आलेखों से नाटयशास्त्र की हृदयगम करने मे हमारे कलाकारों की विशेष सुविधा प्राप्त होगी और नाटक के क्षेत्र में जो भ्राँन्तियाँ तथा अस्पष्टतायें कलाकारों के मन में हैं वे निश्चिय ही दूर हो जायेंगी।

आज के परिप्रेक्ष में नाटक का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। नाटक दृश्य-काव्य होने के कारण इसका प्रभाव जनता पर अधिक पड सकता है। भरत का नाटयशास्त्र इस देश की साँस्कृतिक भावना से सम्बद्ध है और आज के युग में जहाँ जनता भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीन हो रही है वहाँ इन आलेखों का प्रभाव कल्याणकारी होगा।

मैं डा0 मिश्र को इन आलेखों के लेखन पर हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इसका प्रकाशन सुचारू रूप से होकर जनता के बीच में समादृत होगा।

डा0 मिश्र के लेखन के प्रति मेरी शुभकामनायें हैं।

डा0 रामकुमार वर्मा

साकेत - इलाहाबाद - २

संकल्प

नाटय शास्त्र पर जितना लिखा गया है उसका दशाश भी उसे समझा नहीं गया है। नाटयशास्त्र काव्य और कला का विश्व-कोश है।साथ ही सिद्वान्त और व्यवहार दोनो पक्षों की विराट चेतना का अप्रतिम सग्रह है। अत उसे समझने के लिए अध्येता का स्वरूप भी द्विगुणात्मक होना चाहिए।

मै विगत ३० वर्षों से इसका अध्ययन कर रहा हूँ। मुझे अब यह ग्रंथ कुछ-कुछ समझ आने लगा है। लेखक अभिनेता तथा निर्देशक के रूप मे जीवन की लम्बी यात्रा करने के बाद अब मेरे शेष जीवन का यही संकल्प है कि मै इस ग्रंथ के शब्दाराधन मे जीवन काट दूँ। इस ग्रंथ का एक-एक श्लोक मेरे मानस में कला और काव्य की सुललित कालिन्दी बहा देता है।

यह पुस्तक इस ग्रंथ की परिचयात्मक भूमिका भर है। इसे लिखाने का श्रेय उत्तर मध्य क्षेत्र साँस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद के निदेशक श्री हृदय नारायण श्रीवास्तवजी को है। मेरा तो यह विनम्र प्रयास भर है। इसके द्वारा मैंने नाटयशास्त्र और उसके कर्त्ताओ के प्रति अपनी विनम्र भावाजलि प्रस्तुत की है।

पुस्तक के प्रारम्भ मे उसी प्रकार की वार्ता-शैली को ग्रहण किया है जिसका प्रयोग भरत ने ग्रंथ के प्रथम अध्याय में किया है। इससे शैली में रोचकता समाविष्ट हो गई है।

सामग्री के सयोजन में सिने-अभिनेता श्री सज्जन जी तथा श्री ओ पी शर्मा दिल्ली को मैं नहीं भूल सकता जिनके साथ नाटयशास्त्र पर सन् १९७० से एक साधना प्रारम्भ की थी। उस साधना ने रहस्य की इतनी परतें खोलीं कि नाटयशास्त्र की व्याख्या के आयाम ही बदल गए।

रंगकुटी
राजाधिराज मार्ग
मथुरा - २८१००१

ब्रजबल्लभ मिश्र
एम० ए० पी-एच० डी०

अनुक्रम





औरगाबाद की गुफा मे दर्शित नृत्य-दल समय १० वी शताब्दी

अध्याय एक

नाट्यशास्त्र क्या है?

इसके सैतीस अध्याया मे भारतीय सस्कृति के स्वर्णिम इतिहास के रहस्य छिपे हुए है। वैदिक काल से पहले की सभ्यता और कला के रूप की कालिन्दी बह रही है भारतीय धर्म और दर्शन की कहानी सजी हुई है और आदिम सभ्यता स आज तक के मानव समुदाय के विकास की यात्रा के विभिन्न सोपान दिखाई देते है।



न तज्ज्ञानं न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला ।
ना सौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्नदृश्यते ।।
१-११६

कोई ज्ञान कोई शिल्प कोई विद्या कोई कला कोई योग तथा कोई कर्म ऐसा नही है जो नाटय मे दिखाई न देता हो।

नाट्यशास्त्र का नाम तो आप जानते हैं साहित्य और कला के क्षेत्र मे इसके नाम की बार-बार चर्चा होती है किन्तु क्या आप यह भी जानते हैं कि जिस 'नाटयशास्त्र' का हम नाम लेते हैं उसके पृष्ठो मे कितने विषय छिपे हुए हैं? काव्य और कला के किस-किस अग पर 'नाटयशास्त्र' मे कहाँ क्या लिखा हुआ है?

सचाई और ईमानदारी को यदि आप महत्व देते हैं तो सच-सच बताइये कि क्या आपने कभी नाटयशास्त्र' को पढा है? क्या आप बता सकते हैं कि उसके दसवे अध्याय मे किस बात का वर्णन किया गया है? यदि हम सात्त्विक भाव के बारे मे जानना चाहते हैं ता किस अध्याय को पढे? शायद आप नही बता सकते। मेरे विचार से आप ही क्या जो नाटय-कला को अपना पेशा बनाये हुए हैं या नाटय के नाम पर सस्थाएँ खोले बैठे हैं वे भी नही बता सकते।

'नाट्यशास्त्र' आज बुद्धिजीवियो की बहस का मुद्दा है उनके अध्ययन का साधन नहीं। 'नाटयशास्त्र' आज भाषणो मे पुकारने की चीज है पढने और समझने की नहीं।'नाट्यशास्त्र' की चर्चा आज फैशन की वस्तु है, चिन्तन और मनन की नही।'नाट्यशास्त्र' के नाम का उपयोग आज के बुद्धिवादी अपना प्रभाव डालने के लिए करते हैं। लेकिन यदि उन्ही बुद्धिवादियों से आप 'नाट्यशास्त्र' के छब्बीसवे तेईसवें, बाईसवें अध्याय की विषय-वस्तु का विवरण जानने की कोशिश करें तो लोग चतुराई से बात को टाल जायेंगे।

अध्येता कहलाने वाले ज्यादा से ज्यादा 'नाट्यशास्त्र' के चौथे अध्याय मे बताये गये १०८ प्रकार के '**करणों**' की चर्चा भारत के शास्त्रीय नृत्यों के प्रसग में कर देगे। **अभिनय** के **आंगिक**, **वाचिक**, **आहार्य** और **सात्त्विक** भेद बता देगे। तीन प्रकार के **प्रेक्षागृह** बता देंगे। **जर्जरध्वज**, **सूत्रधार**, **नान्दी** आदि के नाम गिना देंगे। या फिर **रस** और **भाव** के बारे मे व्याख्यान देने लगेंगे। 'नाट्शास्त्र' मे **कुहकाभिनय** कहाँ है और क्यों है? 'नाट्यशास्त्र' मे **चित्राभिनय** के अन्तर्गत क्या-क्या प्रतीक और अभिनय बिम्ब भरतमुनि ने बताये हैं? **सामान्य अभिनय** का सही अर्थ क्या है? **पच तन्मात्रों** का अभिनय क्या है? नाट्यशास्त्र में **अभिनेता** शब्द देखने को क्यों नही मिलता? 'नाट्यशास्त्र' में **संगीत** शब्द का प्रयोग क्यों नही हुआ? इसका उत्तर शायद नाट्यशास्त्र' की चर्चा करनेवाले अधिकांश लोगों के पास नहीं होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि 'नाट्यशास्त्र' एक अमूल्य और अक्षय सम्पदा है, किन्तु सस्कृत में होने के कारण यह अधिकांश लोगों की समझ से दूर है। जो संस्कृत नही जानता उसके सामने कोई व्यक्ति 'नाट्यशास्त्र' के कुछ श्लोक बोल दे तो तुरन्त उसका प्रभाव जम जाता है। सत्य यह है कि कोई संस्कृत का कितना भी बडा ज्ञाता हो वह अपने संस्कृत ज्ञान के आधार पर 'नाटयशास्त्र' के ५-६ अध्यायों को ही समझ सकता है। यदि संस्कृत ज्ञान के आधार पर पूरा नाटयशास्त्र' विद्वानों की समझ में आ गया होता तो अब तक नाट्यशास्त्र' का अनुवाद हिन्दी ही नहीं बंगला, तेलगू, तमिल मराठी गुजराती उडिया असमी मलयालम आदि सभी भाषाओं में हो चुका होता। देश का कौन सा ऐसा प्रान्त अथवा क्षेत्र है जहाँ संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान नहीं हैं? साथ ही सस्कृत का ऐसा कौन सा विद्वान है जिसने काव्यशास्त्र तथा सस्कृत नाटकों के सन्दर्भ मे 'नाट्यशास्त्र' का नाम न सुना हो।

'नाटयशास्त्र' यद्यपि संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है। इसके ३७ अध्यायो मे लगभग ६००० श्लोक हैं। किन्तु इसके साथ सबसे बडी कठिनाई यह है कि इसमें गायन वादन नर्तन अभिनय तथा रगकर्म से सम्बन्धित अनेक शिल्पों और विधाओं के इतने अधिक पारिभाषिक शब्द हैं कि उनके सही

अर्थ मात्र सस्कृत भाषा के ज्ञान से ही नही समझे जा सकते। उनके अर्थ कोषगत् अर्थों से पूर्णत भिन्न हैं। साथ ही एक-एक शब्द अलग-अलग प्रसंगों मे अपना अलग-अलग अर्थ देता है। यही कठिनाई है कि सारा देश विद्वानों से भरा हुआ है किन्तु आज तक इसका शुद्ध अनुवाद नही हो पाया है।

कलकत्ता के सुधी विद्वान डा० मनमोहन घोष का नाम इस क्षेत्र मे सदा याद रखा जावेगा। उन्होने सन् १९५० मे 'नाटयशास्त्र' का अंग्रेजी अनुवाद किया था। वह ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल कलकत्ता से छपा था। दुर्भाग्य से उस अनुवाद में २८ से ३३ तक के ६ अध्याय नही थे। डा० घोष ने बाद मे एक प्रयास और किया और मनीषा के नाम से दो पुस्तको मे 'नाटयशास्त्र' प्रकाशित हुआ। एक पुस्तक मे केवल मूल सस्कृत पाठ था और दूसरी मे केवल अंग्रेजी अनुवाद।

डा० घोष के अग्रेजी अनुवाद से समाज के उस वर्ग को बहुत लाभ हुआ जो अंग्रेजी बोलने तथा लिखने का अभ्यस्त था। जैसा कहा जा चुका है कि 'नाट्यशास्त्र' का साहित्य भारत की प्राचीन कला और सस्कृति का अक्षय कोष है। अंग्रेजी वाले लोगों को यह सम्पदा मिल गई। अग्रेजी वाले चन्द लोग जो बार-बार 'नाट्यशास्त्र' के सन्दर्भ अग्रेजी मे प्रस्तुत करते थे थोडे ही समय में शास्त्र के अधिकारी विद्वान बन गये। समाज मे जब भी भारतीय प्राचीन कला पर कोई गोष्ठी हुई इन्हें अध्यक्ष बनाकर बिठाया जाने लगा किसी पत्रकार को कभी भारतीय कला पर सामग्री की अपेक्षा हुई उनका साक्षात्कार (Interview इन्टरव्यू) लेने पहुँच गया। भारतीय कला पर किसी ने पुस्तक लिखी, भूमिका इन लोगो से लिखाई गई।

सत्य यह है कि अंग्रेजी के द्वारा 'नाट्यशास्त्र' पढनेवालो का ज्ञान बहुत सतही और कम है। इनके पास 'नाट्यशास्त्र' की गहरी और गम्भीर बाते संयोग से पहुँच ही नहीं पाई हैं। उस संयोग का कारण यह है कि एक तो इस वर्ग के लोगों ने डा० मनमोहन घोष के अंग्रेजी-अनुवाद के माध्यम से 'नाट्यशास्त्र' को पढ़ा है वह अनुवाद पूर्ण नहीं था। अत शास्त्र की पूरी विषयवस्तु का इन्हें ज्ञान नहीं हो पाया। दूसरे अंग्रेजी भाषा में वह क्षमता

नही है कि 'नाट्यशास्त्र' के विषयों का अग्रेजी में अनुवाद कर सके। मैंने स्वय इस स्थिति को झेला है। सिनेजगत् के प्रसिद्ध अभिनेता सज्जन जी मॉडर्न स्कूल, दिल्ली के फोटोग्राफी विभाग के अध्यक्ष, श्री ओ० पी० शर्मा तथा मैने सन् १९७० मे 'नाटयशास्त्र' के छटवे और सातवें अध्याय को आधार बनाकर '**रस-भाव-दर्शन**' नामक एक परियोजना पर कार्य करना प्रारम्भ किया। हम तीनो ने निरन्तर १० वर्ष इस परियोजना पर काम किया और सन् १९८१ मे वह पूर्ण हुआ। सज्जन जी ने भरत के निर्देश के अनुसार रस और भाव की मुद्रायें बनाई, श्री ओ० पी० शर्मा ने उनके २१५ विभिन्न चित्र खींचे और मैंने संस्कृत हिन्दी तथा अंग्रेजी में सम्बन्धित श्लोक और कारिकाओ का सम्पादन और अनुवाद का कार्य किया। डा० घोष की अंग्रेजी शब्दावली से मै किंचित भी सहमत नही था उन्होंने रस और भाव के अनेको नामों के लिए अग्रेजी मे विशेषण शब्द प्रयुक्त किए जबकि सस्कृत मे वे भाववाचक संज्ञायें थीं। मेरा दृष्टिकोण था कि अनुवाद में संज्ञा के लिए संज्ञा ही आनी चाहिए विशेषण नही। दूसरी मेरी आपत्ति यह थी कि शब्द का अनुवाद करते समय अंग्रेजी-कोष को आधार न बनाया जाये भरत के मूल भाव को समझा जाये।

एक शब्द के उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। श्रृंगार नामक शब्द सस्कृत और हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध है। डा० घोष ने इसके लिए अंग्रेजी मे (EROTIC) 'ऐरोटिक' शब्द का प्रयोग किया। 'ऐरोटिक' वस्तुत '**ईरोज**' शब्द से बना है और '**क्रैब्स का सिनोनिम्स**' देखने पर ज्ञात हुआ कि 'ऐरोटिक' में यौन-वासना सम्मिलित है। भरत ने श्रृंगार रस के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसे '**आचारसिद्धो उज्ज्वलवेषात्मक**' बताया है। अब प्रश्न यह है कि भरत की कल्पना का श्रृंगार उज्ज्वल वेशवाला है आचारसिद्ध है उसमें दूर तक वासना की गन्ध नहीं है तब उसके लिए 'ऐरोटिक' शब्द का प्रयोग कहाँ तक उचित है ?

मैं लम्बे समय तक अनेक कोष देखता रहा। डा० अज्ञेय से विचार-विमर्श किया, डा० विद्यानिवास मिश्र डा० माणिक, जी० चतुर्वेदी और न जाने कितने विद्वानों से कितनी बार विचार-विमर्श हुआ। किसी के पास ऐसा समाधान नहीं था जो भरतमुनि की मूल भावना को साकार कर सके।

अंग्रेजी भाषा की असमर्थता यह है कि उसमे 'रस' के लिए कोई शब्द नही है। विदेशी विद्वानो को जब रस पर लिखना पडा तो उन्होने इसके लिए शब्द गढे 'एस्थैटिक प्लैजर' और कभी 'एस्थैटिक एक्सपीरियेन्स' पर अग्रेजी भाषा मे रस के लिए कोई एक शब्द नही था। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अग्रेजी के माध्यम से 'नाटयशास्त्र' पढनेवालो की 'नाटयशास्त्र' सम्बन्धी कैसी और कितनी जानकारी होगी? 'नाटयशास्त्र' के नाम की महिमा इतनी विलक्षण है कि जिन अंग्रेजी के चन्द लोगो ने अग्रेजी मे इस पर बोलना और लिखना शुरू किया वे आज देश मे इस विषय के अधिकारी विद्वान माने जाते हैं।

अनौखी बात है। 'नाट्यशास्त्र' को सस्कृत के माध्यम से इसलिए पूरी तरह नहीं समझा जा सकता, क्योंकि उसमें गायन वादन नर्तन अभिनय आदि के हजारो पारिभाषिक शब्द हैं। जब तक उन शब्दो के सही अर्थ का ज्ञान न हो इस ग्रन्थ की बारीकियो को नही पहचाना जा सकता। अंग्रेजी भाषा मे वह शक्ति नहीं कि इसके शब्दो की मूल आत्मा को साकार कर सके।

इसके अलावा इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होने का इतिहास और उससे सम्बन्धित समस्यायें भी रही हैं। अन्य लेख में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहाँ संक्षेप में इतना ही समझ लेना जरूरी है कि स्वर्गीय एम० रामकृष्ण कवि ने देश भर में फैली 'नाट्यशास्त्र' की समस्त पाण्डुलिपियों को सामने रखकर **'अभिनव भारती'** नामक टीका का सहारा लेकर लगभग ४५ वर्ष तक कठोर परिश्रम किया और इसका सही पाठ तैयार किया। यह ४ भागों में प्राच्य-विद्या-सस्थान बडौदा से विभिन्न कालों में प्रकाशित हुआ। इस समय **'नाट्यशास्त्र'** का उससे अधिक सही और प्रामाणिक पाठ दूसरा कोई नहीं है। निर्णय सागर प्रैस बम्बई तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस से भी इसके मूल पाठ विभिन्न कालों में प्रकाशित हुए हैं; किन्तु सबसे अधिक शुद्ध पाठ बडौदावाला ही माना जाता है।

बडौदा से चारों भाग लगभग ४० वर्ष की अवधि में अलग-अलग

समय में प्रकाशित हुए। नतीजा यह हुआ कि कहीं किसी पुस्तकालय में इसके पहले दूसरे भाग हैं तो तीसरा-चौथा नही। कहीं ३ भाग हैं कहीं एक भाग है कही २ भाग हैं। बहुत पहले मथुरा के राजकीय संग्रहालय के अध्यक्ष डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे विद्वान थे।'नाट्यशास्त्र' के प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग उनके समय मे छपे। अत उन्होने पुस्तकालय में मँगा लिये। चौथा भाग आज भी वहाँ नही है। दिल्ली विश्वविद्यालय ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बौम्बे के प्राचीन और विशाल पुस्तकालयो मे भी 'नाट्यशास्त्र' के पूरे भाग आज देखने को नही मिलते। मैं स्वयं सन् १९६९-७० मे दिल्ली तथा बम्बई के अनेक बडे-बडे पुस्तकालयों में खोज चुका हूँ। मुझे बहुत निराशा हुई। पूरे 'नाट्यशास्त्र' के हिन्दी अनुवाद का मैंने संकल्प लिया। जगह-जगह भटका कि चारों भाग कहीं मिलें। नहीं मिलें। तब अलग-अलग स्थानो से एकत्र किए। ८ फरवरी, १९७२ को मैसर्स मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली से इसके प्रकाशन हेतु मेरा अनुबन्ध हुआ। दुर्भाग्य से फर्म के वयोवृद्ध संचालक और प्राच्य साहित्य के पारखी श्री-सुन्दर लाल जी का देहान्त हो गया और इसके प्रकाशन की योजना खटाई मे पड गई।

'नाट्यशास्त्र' का अनुवाद समाप्त करने के बाद मैं जहाँ-जहाँ से जो भ।। मॉंगकर लाया था मैंने लौटा दिये। पिछले वर्षों में मैंने विचार किया कि 'नाट्यशास्त्र' की पारिभाषिक शब्दावली का कोश बन जाये तो अध्येताओं के लिए इसका अध्ययन सरल हो जाएगा। मैं संकल्प लेकर काम पर जुट गया। कई वर्ष तक शब्दों से जूझता रहा।अन्त में **श्री केशव कोठारी** और **डा० कपिला वात्स्यायन** ने मुझे प्रेरित किया प्रोत्साहित किया और मै काम पर जुट गया। **'नाट्यशास्त्र का पारिभाषिक सन्दर्भ कोश'** बनाने के समय मुझे पुन चारों भागों की आवश्यकता हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मुझे इस काम के लिए ४० हजार रुपये की वित्तीय सहायता दी। मुझे ज्ञात हुआ कि **नटेश्वर कला मन्दिर, दिल्ली** प्राचीन ग्रन्थों की माँग पूरी करता है। कोष-रचना के समय उन्होंने चारों भागों की फोटो कॉपी की जिल्दें मुझे दीं तब मैं काम पूरा कर सका।

यह एक सच्चाई है कि 'नाटयशास्त्र' के बारे मे पूरी और सही

जानकारी जब चाहने वाले विद्वानो का नही मिल पाती तब साधारण जनता को भला कैसे मिल सकती है? इसलिए सबसे पहले हम यहाँ सक्षेप मे यह बताना जरूरी समझते हैं कि 'नाटयशास्त्र' के ३७ अध्यायो मे क्या है ?

अध्यायो की विषय-वस्तु की जानकारी से पहले यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि देश मे 'नाटयशास्त्र' के दो रूप प्रचलित हैं। काव्यमाला सीरीज के अन्तर्गत निर्णय सागर प्रेस बम्बई से छपनेवाले नाटयशास्त्र' मे ३७ अध्याय थे। चौखम्बा प्रकाशन बनारस से छपनेवाले 'नाटयशास्त्र' मे ३६ अध्याय थे। प्राच्य-विद्या-सस्थान बडौदा से प्रकाशित होने वाले 'नाटयशास्त्र' मे ३७ अध्याय हैं। देश के विद्वानो का बहुमत बडौदा से प्रकाशित पाठ को सबसे अधिक प्रामाणिक मानता है। मैने भी स्वर्गीय एम० रामकृष्ण कवि द्वारा सम्पादित बडौदावाले पाठ को ही प्रामाणिक माना है।

'नाटयशास्त्र' में ३६ अध्याय हैं या ३७ यह विवाद १२वी शताब्दी मे अभिनव गुप्त के सामने भी रहा है। जब अभिनव गुप्त ने नाटयशास्त्र' की 'अभिनव भारती' नामक टीका लिखनी शुरू की तब प्रारम्भ के मगलाचरण मे उसने स्वयं लिखा कि मै भरतुमुनि कृत 'नाटयशास्त्र' के ३६ अध्यायो की व्याख्या लिख रहा हूँ। किन्तु जब ग्रन्थ का अन्त किया तब लिखा सैंतीसवे अध्याय की समाप्ति यहाँ करता हूँ। जिस 'अभिनव भारती' के प्रारम्भ मे आचार्य अभिनव गुप्त ने ३६ अध्यायों की घोषणा की उसी ग्रन्थ के ३७ अध्यायों की उसने टीका लिखी।

अध्यायों की गिनती समझने में इसलिए कोई परेशानी नही होती कि 'नाटयशास्त्र' की रचना पुराणों की लेखन शैली के अनुसार हुई है। इस शैली की कुछ विशेषतायें हैं।जब एक अध्याय समाप्त होता है तब शास्त्रकार लिखता है कि यहाँ अमुक विषय समाप्त हुआ, अब आगे मैं अमुक विषय का कथन करूँगा। 'नाटयशास्त्र' के प्रत्येक अध्याय के अन्त में लेखक उस अध्याय में वर्णित किए जाने वाले विषय की समाप्ति की चर्चा करता है और अगले अध्याय के विषय की घोषणा करता है।

अध्याय एक

पहले अध्याय मे ग्रन्थकार ने सबसे पहले भगवान शिव को प्रणाम किया है। उसके बाद वह कहता है कि एक छुट्टी के दिन स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर ऋषियों ने मुझसे पूछा कि नाटयवेद की उत्पत्ति कैसे और क्यो हुई ? भरत ने ऋषियो को उत्पत्ति का इतिहास बताया कि देवताओ की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने चारो वेदों और चारो उपवेदों का ध्यान करके उनसे सामग्री ली और पचमवेद के रूप मे नाट्यवेद की सृष्टि की। ब्रह्मा जी की आज्ञा के अनुसार मैंने अपने सौ पुत्रों को इसकी शिक्षा दी। श्रृंगार रस के प्रयोग के लिए इसमे स्त्रियों की कमी थी। ब्रह्मा जी ने २४ अप्सराये दी। नारद जी ने गान्धर्ववेद की शिक्षा दी। भगवान शिव की आज्ञा पर तण्डु ने मुझे नृत्य की शिक्षा दी। सभी देवी-देवताओं ने हमें आशीर्वाद दिया और तभी से नाटय की प्रतिष्ठा यज्ञ और जप के समान हो गई। इसके द्वारा मनुष्य को शुभ फल प्राप्त होता है और उसे सत्य और सदाचार की शिक्षा मिलती है।

अध्याय दो

दूसरे अध्याय में भरत बडे, बीच के और छोटे अर्थात् ३ प्रकार के प्रेक्षागृह अर्थात् नाटयशालायें बनाने के विधान विस्तार से समझाता है। रगशाला बनाने से पहले भूमि और मिट्टी की परीक्षा तथा भूमि साफ करने के नियम बताता है। नाप के लिए वह हाथ या डण्डे का नाप तय करता है। कई तरह के नक्शे बताता है तथा रंग-मंच और दर्शको के बैठने का विधान समझाता है। यह भी बताता है कि अमुक-अमुक नक्षत्रों में भूमिपूजन तथा रगशाला बनाने का काम शुरू करना चाहिए ध्वनि के निर्देश छत बनाना समतल भूमि बनाना लकड़ी की सज्जा तथा अलग-अलग दिशाओं मे देवताओ की स्थापना के निर्देश देता है।

अध्याय तीन

तीसरे अध्याय में वह रगमच के ४५ देवताओं की चर्चा करता है, देवताओं के पूजन की सामग्री और विधि विधान पर विस्तार से प्रकाश डालता है। नाट्यशाला की प्रतिष्ठा के लिए अन्य निर्देश भी देता है।

शास्त्रकार कहता है कि नाटयगृह बन जाने के बाद एक सप्ताह तक ब्राह्मणो द्वारा जप कराना चाहिए। रात्रि आगमन से पूर्व स्नान आदि करके मन्त्रो से देवताओ का पूजन करना चाहिए। ब्राह्मणो को चाहिए कि वे तीन रात्रि तक उपवास रखे तब मन्त्रोच्चार करे।

इसके पश्चात् सामग्री से होम करने की रीति समझाता है। पश्चात् शुभ-अशुभ्र विचार के लिए कलश-भेदन की क्रिया समझाता है। इस वर्णन मे शास्त्रकार बार-बार यह चेतावनी देता है कि अग्नि भी शायद इतनी जल्दी किसी वस्तु को नही जला सकती, जितना जल्दी नियम रहित नाटय का प्रयोग मनुष्य को नष्ट कर देता है।

आगे शास्त्रकार रग-प्रद्रीपन की क्रिया पर आता है और कहता है कि दीपो से प्रेक्षागृह को आलोकित करने का विधान सदैव ध्यान मे रखना चाहिए। वह रग-प्रदीपन में प्रेक्षागृह के प्रत्येक भाग मे प्रदीपन का निदेश देता है। पूजन-विधान मे वह मन्त्रोच्चार के समय ४५ देवताओ की पूजा के अलावा राजा तथा प्रजा के कल्याण की कामना भी करता है।

अध्याय चार

चौथे अध्याय का सम्बन्ध नृत्य की शिक्षा से है। वह पुराना इतिहास बताता है कि हमने एक बार ब्रह्मा जी के आदेश पर भगवान शकर के सामने '**त्रिपुरदाह**' और '**अमृतमथन**' नामक दो प्रदर्शन प्रस्तुत किए थे। शंकर जी ने देखकर कहा कि ये प्रयोग शुद्ध हैं इन्हे चित्र प्रयोग बनाना है तो इनमे नृत्य सम्मिलित करो। भगवान शकर ने अपने प्रिय शिष्य तण्डु को निर्देश दिया। उन्होंने हमको नृत्य की शिक्षा दी। नृत्य-शिक्षा हेतु हमे सबसे पहले १०८ मुद्राओ का अभ्यास कराया गया। इन्हे शास्त्र मे '**करण**' कहा गया है। करणो के सयोग से **अगहार** बनते हैं। हमे बाद मे ३२ अगहार सिखाये गये।इस प्रकार हमने नृत्त और नृत्य की शिक्षा लेकर उसे नाट्य मे जोडा।

अध्याय पाँच

पाँचवें अध्याय मे भरत ने पूर्वरग के विधान का विस्तार से पिवेचन किया है। पूर्वरग प्रदर्शन से पूर्व तथा प्रदर्शन के आरम्भ की क्रियाओ का

ब्यौरा प्रस्तुत करता है। वाद्य-वादको के बैठने का स्थान मच के किस ओर रखना चाहिए। वाद्य-वादको तथा गायक-गायिकाओ को आगे पीछे किस प्रकार बैठना चाहिए। वाद्यो को मिलाने का क्रम क्या होना चाहिए। प्रदर्शन प्रारम्भ करते समय किस विधान से तथा किन पात्रो से मच पर मगलाचरण कराना चाहिए। नृत्य पहले प्रारम्भ करना चाहिए। नर्तकी को पुष्पाजलि के साथ मच पर किस प्रकार प्रवेश करना चाहिए। बाद मे अन्य नर्तकियो के दल को किस प्रकार नृत्य करना चाहिए। नृत्य के साथ गीत मिलाकर उसे नृत्य कैसे और कब बनाना चाहिए। विदूषक आदि को मच पर कब और किस प्रकार आकर नाटक के कथानक की भूमिका बाँधनी चाहिए आदि-आदि का विवरण इसमे दिया गया है।

अध्याय छ

छटवे अध्याय मे भरत रस की चर्चा करता है। वह नाटक मे शृगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानक बीभत्स तथा अदभुत नामक आठ रस बताता है। रसो के देवताओ का परिचय देता है रसो के रग बताता है। प्रत्येक रस के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालता है। उस रस से सम्बन्धित उसके छोटे से छोटे अग का विवेचन करता है और बहुत मनोवैज्ञानिक ढग से यह बताता है कि रस मानसिक आनन्द देने वाली वस्तु है। रसो से भावो का सम्बन्ध भी स्पष्ट किया गया है और रस तथा भावों के परस्पर सम्बन्ध से रसानुभूति की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय सात

सातवे अध्याय मे भावो का विस्तार से विवेचन किया गया है भावो के पाँच प्रकारो का विवेचन किया गया है। आठ स्थायी भावो मे रति हास शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा तथा विस्मय नामक भावो के हृदय मे उदय होने के कारणो का विवेचन किया गया है। तैतीस व्यभिचारी भावो मे निर्वेद ग्लानि से लेकर त्रास और वितर्क तक के भावो का विवेचन किया गया है। आठ सात्विक भावो में पसीना आना जड-हो जाना कांपने लगना आँसु आना मुख का रग बदल जाना रोमाच हो जाना गला रुँध जाना तथा मूर्च्छित होना आदि का विवेचन किया गया है। इन भावों के प्रयोग करने की

विधि पर प्रकाश डाला गया है तथा विभिन्न रसो मे प्रयोग होनेवाले भावो का विवेचन किया गया है।

अध्याय आठ

आठवे अध्याय से अभिनय-शिक्षा का क्रम प्रारम्भ होता है। अभिनय के आगिक वाचिक आहार्य और सात्त्विक नामक चार भेद बताकर इन चारो की शाखा-प्रशाखाये बाँटता जाता है और उनके प्रयोग की विधियो के निर्देश देता है। आगिक अर्थात् शरीर-सचालन की विधियाँ बताते हुए वह पहले शरीर को अगो-उपागो मे बाँटता है पश्चात् सिर भौह पुतली पलक नाक मुँह ठोडी हाथ, बगल पेट कमर जघा तथा तलवे आदि के सचालन की सैकडो विधियाँ बताता है। इसी अध्याय मे वह ३६ प्रकार की दृष्टियाँ बनाने की शिक्षा देता है और देखने के ८ प्रकार समझाता है।

इस अध्याय मे भरत ने शरीर के बडे से बडे और छोटे मे छोटे अगो के सचालन की विधियाँ तथा उनके प्रयोगो की विस्तृत शिक्षा दी है। उसकी नजर इतनी बारीक है कि वह पुतलियो तथा पलको के चलाने के साथ-साथ भृकुटि और आँख के तारे के सचालन की विधियाँ भी विस्तार से बताता है।

अध्याय नौ

नवे अध्याय मे वह ६४ प्रकार के हाथ की मुद्राये बनाने की शिक्षा देता है। हाथो की मुद्राओ मे वह एक हाथ की २४ मुद्राये दोनो हाथो की १३ मुद्राये तथा नृत्त हस्त की २७ मुद्राये बताता है। भरत इन्हे असयुत-हस्त सयुतहस्त तथा नृत्त हस्त कहता है।प्रत्येक मुद्रा का वह नामकरण करता है और उसके प्रयोग के स्थान और प्रसग बताता है।इसके बाद वह १० प्रकार की अगुली-सचालन तथा ४ प्रकार की कलाई-सचालन की विधियाँ बताता है। आगे वह छाती चलाने की बगल चलाने की, पेट चलाने की कमर चलाने की ऊरू चलाने की जघा चलाने की तथा पाँच चलाने की अनेक विधियो और उनके उचित प्रयोग के सम्बन्ध मे विस्तार से विवेचन करता है। आंगिक शिक्षा का यह विधान योग के आसनो की भाँति है। शरीर के

छोटे-छोटे भाग को वह योगासनो की शिक्षा के द्वारा अभ्यास कराकर अभिनय के लिए तैयार कराता है।

अध्याय दस

दसवे अध्याय मे वह चारियो के बारे मे बताता है। मच पर विशेष प्रकार से सगीत और ताल के साथ चलने की क्रिया का नाम चारी है। यह चलना भी कोई साधारण नही है चारियो की रचना मे करण खण्ड तथा मण्डलो का प्रयोग होता है। वह चाहता है कि उसका कलाकार मच पर चाहे एक पॉव ही चले किन्तु उसके चलने में कलात्मक सौन्दर्य होना चाहिए। इसलिए वह इसके साथ लय और ताल को जोडता है। वह १६ प्रकार की आकाशचारियो तथा १६ प्रकार की भूमिचारियो का विस्तार से वर्णन करता है। इसी प्रसग मे वह धनुष तथा अन्य शस्त्रो को अभिनय मे चलाने की विधियाँ बताता है। अन्त मे व्यायाम के नियम आहार तथा वर्जनाये बताता है कि व्यायाम करने वालो को इन बातो का ध्यान रखना चाहिए।

अध्याय ग्यारह

ग्यारहवे अध्याय मे वह मच पर घूमने तथा मण्डलाकार प्रस्तुति के नियम बताता है। इस प्रसग मे सबसे पहले वह दस प्रकार के आकाशमण्डल तथा दस प्रकार के भूमि मण्डलो के विधान समझाता है। इन मण्डलो को बनाने के लिए नृत्त के किस करण का किस हस्तक का,किस पाद का तथा किस कटि आदि का प्रयोग किया जाता है इस पर प्रकाश डालता है।

अध्याय बारह

बारहवे अध्याय मे पात्रो को शिक्षा देता है कि मच पर प्रवेश किस प्रकार करना चाहिए। पावो को उठाकर किस प्रकार,किस गति से भूमि पर लाना चाहिए। चलने के समय लय कौन सी प्रयोग करनी चाहिए। उत्तम प्रकृति के मध्यम प्रकृति के तथा अधम प्रकृति के लोगो को मच पर किस प्रकार चलना चाहिए। पश्चात् यह बताता है कि दिन मे तथा रात मे चलने मे क्या अन्तर रखना चाहिए। राजा की चाल ज्वर से पीडित आदमी की चाल दुखी व्यक्ति की चाल विदूषक की चाल सर्दी से ठिठुरते हुए की

चाल वर्षा में भीगते हुए की चाल भयभीत व्यक्तियो की चाल जल मे तैरने की चाल रथ की चाल आकाश मे उडने की चाल वृद्ध व्यक्तियो की चाल लगडे की चाल बालक की चाल स्त्रियो की चाल नशे मे मस्त व्यक्ति की चाल प्रेमी-प्रेमिका के मिलने की चाल रोगी की चाल घोडे की चाल हाथी की चाल सर्प की चाल शेर की चाल आदि का विशद वर्णन इस सन्दर्भ मे किया गया है। मच पर परिक्रमा करने से स्थान परिवर्तन के नियम बताये गये हैं। पश्चात् सोने के प्रकार बताये गये हैं। स्वस्थ आदमी को रोगी को बच्चो को थके हुए आदमी को किस प्रकार सोना चाहिए। अन्त मे विभिन्न लोगो के बैठने के आसनो का वर्णन है। राजा ऋषि गुरु मन्त्री रानी कुमार सेनापति दूत तथा वेश्या आदि को सोने के चाँदी के लकडी के रेशम के रुई के मृगछाल के बैत आदि के आसनो का विधान समझाया गया है।

अध्याय तेरह

तेरहवे अध्याय का शीर्षक कक्षा-विभाग है लेकिन इसमे भरत न रगकर्म के अनेक सार्थक पक्षो की शिक्षा दी है। मच की पूर्व पशिचम दिशाये निर्धारित करके पात्रो को प्रवेश-नियम बताये हैं। जो पात्र मच पर बाद मे प्रवेश करता है उसे बाहर से आया हुआ समझने का नियम स्पष्ट किया है। मच को कक्षो मे विभाजित किया गया है और विभिन्न कक्षो के नामकरण दिशाओ के आधार पर किए गये हैं। आगे इसी अध्याय मे पात्रो को निर्देश दिया गया है कि भूमिका करते समय क्षेत्र विशेष की प्रवृत्तियो मे आवन्ती पाचाली औद्रमागधी तथा दाक्षिणात्या के निवासियो मे स्त्री और पुरुषो के रहन-सहन वेश भूषा बोल-चाल तथा स्वभाव को ध्यान मे रखना चाहिए और निर्देश दिया है कि जिस क्षेत्र के पात्र की भूमिका करनी हो उस क्षेत्र की प्रवृत्ति का ध्यान भूमिका करने वाले को अवश्य रखना चाहिए। अन्त मे प्रयोग के सुकुमार और आविद्ध नामक दो रूपों का सम्बन्ध नाटयधर्मी और लोकधर्मी परम्पराओं से जोड़कर बताया गया है कि सांकेतिक अभिनय की प्रणाली नाट्यधर्मी कहलाती है और उपकरण तथा सामग्री के साथ किया जाने वाला अभिनय लोक-धर्मी परम्परा से सम्बन्धित है।

अध्याय चौदह

चौदहवे अध्याय का शीर्षक वागाभिनय है। इसमें वाणी के अभिनय से सम्बन्धित छन्द-विधान पर प्रकाश डाला गया है। इसमें सर्वप्रथम संस्कृत पाठ के नियमो के अन्तर्गत अक्षरो के रूप, उनके उच्चारण के स्थल उनकी घोष और अघोष ध्वनियाँ शब्द के लक्षण व्याकरण के नियम चूर्णपद तथा निबद्धपद का अन्तर बताते हुए भरत ने अक्षरो के मिलाने से विभिन्न प्रकार के छन्द बनाने के नियम बताये हैं। अनुष्टुप गायत्री जगती शक्करी आदि के भेदोपभेदो पर प्रकाश डालते हुए गुरु लघु वणो से ८ प्रकार के त्रिको को स्पष्ट किया है और मकार जकार भकार आदि नामक त्रिकों से समवृत्त विषमवृत्त तथा अर्ध समवृत्तो के रचना-विधान पर प्रकाश डाला है।

अध्याय पन्द्रह

पन्द्रहवे अध्याय का शीर्षक वृत्त-लक्षण है। इसमे विभिन्न प्रकार के वृत्तो से बनने वाले तनुमध्या मकरशीर्षा मालिनी उद्धता भ्रमरमाला सिंहलेखा मत्तचेष्टित, विद्युन्माला आदि नामक ६५ प्रकार के छन्दों की रचना करने के नियम बताये हैं। साथ ही प्रत्येक छन्द का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। अन्त में आर्या नामक छन्द-रचना के यति के नियमों पर प्रकाश डालते हुए आर्या के पथ्या, विपुला चपला मुखचपला तथा जघन-चपला नामक भेदों के प्रस्तार के नियमों का विस्तार से विवेचन किया है।

अध्याय सोलह

सोलहवे अध्याय का शीर्षक अलंकार-लक्षण है। इसमे भरत ने काव्य के विभिन्न अंगो का विवेचन किया है। सर्वप्रथम काव्य के अक्षरसघात शोभा अभिमान गुण कीर्तन आदि ३६ लक्षणों का विवेचन किया है। आगे काव्य के उपमा दीपक रूपक यमक आदि अलंकारों के लक्षण बताये हैं। काव्य-दोषों के अन्तर्गत गूढार्थ अर्थहीन एकार्थ आदि नामक १० दोषो का वर्णन किया है। तत्पश्चात् काव्य के प्रसाद समाधि माधुर्य आदि १० गुणो का विवेचन किया है। रसों के अनुकूल काव्य-रचना के लक्षणो पर प्रकाश

डाला है। अन्त मे रचनाकारो को निर्देश दिया है कि नाटय के कथानक मे मृदु और ललित शब्दो का प्रयोग करना चाहिए ताकि सबकी समझ मे सरलता से आ जाये और दर्शक उसका आनन्द ले सके।

अध्याय सत्रह

सत्रहवे अध्याय का शीर्षक भाषा-लक्षण है। इसमे भरत ने सबसे पहले प्राकृत भाषा के लक्षणो पर प्रकाश डाला है। शब्द के शुद्ध देशज और विभ्रष्ट रूप समझाये हैं।असयुक्त अक्षरो के भ्रष्ट रूपो के नियम बताये हैं। भाषा के अतिभाषा जाति भाषा आदि चार रूप बताये हैं। नायक आदि द्वारा सस्कृत तथा छोटे पात्रो द्वारा प्राकृत भाषा बोलने की विधि पर प्रकाश डाला है। स्त्रियो गणिकाओ सेवको ब्राह्मणो आदि द्वारा मागधी शूरसेनी आवन्ती,प्राच्या आदि ७ प्रकार की भाषाओ के प्रयोग समझाये हैं। यह भी स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रो के उच्चारण मे नकारबहुल चकारबहुल, उकारबहुल ओकारबहुल प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं। पात्रो द्वारा किसको किस प्रकार सम्बोधित किया जाता है, इस पर प्रकाश डाला है। काकु-भेद समझाते हुए रसो मे सात स्वरो का प्रयोग समझाया है। अन्त मे ध्वनि के अलंकार बताये हैं जिनसे बोलने मे सुन्दरता आती है। इसी प्रसग मे विरामादि के स्थान समझाये हैं।

अध्याय अट्ठारह

अट्ठारहवे अध्याय का शीर्षक दशरूप लक्षण है। इसमे प्रदर्शन-प्रयोग की दस शैलियो के लक्षणो का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन शैलियो के नाम नाटक प्रकरण समवकार व्यायोग डिम भाण प्रहसन ईहामृग तथा वीथी आदि हैं। इनमे किस रूप मे कौन सी कथा तथा कौन सा पात्र प्रमुख होते हैं कौन सी वृत्तियाँ प्रयोग मे आती हैं कौन से रस प्रमुख होते हैं आदि का विस्तार से वर्णन है। अंक की रचना, अक की विषय-वस्तु अक समाप्त करने के नियमो का भी वर्णन किया गया है। अक-परिवर्तन के लिए ५ प्रकार के अर्थोपक्षेप बताये गये हैं। साथ ही प्रवेशक और विषकम्भक के प्रयोग के नियम बताये गये हैं। सभी के लक्षणो का ब्यौरा देते हुए यह बताया गया है कि एक अंक मे केवल एक माह की कथा दिखाई जानी चाहिए।

अधिक समय बीता हुआ दिखाने के लिए प्रवेशक या विषकम्भक का अमुक प्रकार प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार दस रूपो मे किस पात्र की प्रधानता रहती है। वीथी के १३ अगो की चर्चा की गई है। इस प्रकार १० और १३ दोनो मिलाकर प्रस्तुतिकरण की २३ शैलियाँ इस अध्याय मे स्पष्ट की गई हैं।

अध्याय उन्नीस

उन्नीसवाँ अध्याय भरत ने इतिवृत्त रचना के नियमो पर लिखा है। इतिवृत्त का अर्थ है कथानक। इस अध्याय मे भरत कथानक लिखने के नियम बताता है। वह कहता है कि कथा मे मूल कथा होती है जिसे आधिकारिक कहा जाता है और दूसरी सहायक कथा जिसे प्रासगिक कहा जाता है। कथा मे प्रारम्भ से अन्त तक जो कार्य चलता है उसमे पाँच अवस्थाये होती हैं साथ ही कथा को जोडने वाली पाँच सन्धियाँ होती हैं और पाँच अर्थ प्रकृतियाँ होती हैं जो कथा उद्देश्यपूर्ण अर्थ को स्पष्ट करती हुई आगे बढती हैं।इसके बाद वह कथा के प्रसगो और प्रयोजनो को जोडने वाली सन्धियो के छोटे-छोटे अंगो और अन्तरो की व्याख्या करता है। सन्धियो के वह २१ अग तथा ६४ अन्तर बताता है। वह इसी अध्याय मे विषकम्भ चूलिका प्रवेशक अकावतार अकमुख आदि के प्रयोग के स्थान बताता है। पश्चात् लास्य के अगो की चर्चा करते हुए गीत-प्रस्तुति के विधान पर प्रकाश डालता है। अन्त मे लोक के अनुसार नाटय-प्रस्तुति के विधान की चर्चा करता है।

अध्याय बीस

बीसवे अध्याय मे वृत्तियो के लक्षणों की चर्चा है। वृत्तियो के द्वारा वह यह स्पष्ट करता है कि प्रयोग मे बोलने की ४ वृत्तियाँ अर्थात् शैलियाँ हैं। उनके नाम भारती आरभटी कैशिकी और सात्त्वती हैं। अर्थात् यह बताता है कि प्रस्तुति करने वाले प्राचीन चार वर्गों की वाचन-शैलियाँ कैसी थी। उनके कितने भेद और उपभेद थे तथा उनका प्रयोग अभिनय मे स्त्री और पुरुष पात्रो को किस प्रकार करना चाहिए।

अध्याय इक्कीस

इक्कीसवे अध्याय का नाम आहार्य अभिनय है। इसका अर्थ है

वेशभूषा मुखसज्जा तथा मच-सज्जा। वह इन तीनो पक्षो पर विस्तार से चर्चा करता है। एक-एक अंग के भेद और उपभेद बताता चलता है और पाठको को चकित कर देता है। इसमे भरत नेपथ्य और मच से सम्बन्धित सभी बातो पर विचार करता है। वह पुष्प और मालाओ के प्रयोग की ५ विधियाँ बताता है। आभूषणो के चार भेद करके सैकडो प्रकार के आभूषणो के सज्जा-विधान पर प्रकाश डालता है। मच पर हल्के और नकली आभूषण धारण करने का निर्देश देता है। ताकि पात्र को बोझ का अनुभव न हो और आभूषण खो जाए तो हानि न हो। वस्त्रो के तीन रूप बताता है। सात्त्विक मध्यम और तडक भडक वाले। मुख सज्जा के लिए प्रारम्भिक ४ रगो के मिलान से तरह-तरह के मुख लेप बनाने की विधियाँ समझाता है। काले सफेद मिश्रित और भूरे चार प्रकार के बालो से दाढी मूँछे और जटा आदि बनाने की विधियाँ बताता है। मुकुटो के ३ भेद करके माथे के मुकुट किरीट आदि तथा पीछे और बगल के मुकुट बनाने की विधि बताता है। लम्बे बाल जटा छोटे बाल बनाने के बाद मुखौटे बनाने की शिक्षा देता है। इसी अध्याय मे वह जर्जर ध्वज के लक्षण तथा उसे बनाने की विधि बताता है। वह मुकुट मुखौटे आदि बनाने के लिए बेल की छाल टाट कपडा सरकण्डे लाख अभ्रक मिट्टी आदि के प्रयोग की विधियाँ भी समझाता है। साथ ही मच के नकली उपकरण और शस्त्र आदि बनाने के नियम बताता है।

अध्याय बाईस

बाईसवे अध्याय का नाम सामान्य अभिनय है। कहने को यह सामान्य अभिनय है किन्तु इसमें भरत ने अभिनय के बारीक से बारीक और कठिन से कठिन पक्ष का विवेचन किया है। सबसे पहले वह इस प्रसग मे कहता है कि अभिनय में मनोयोग का होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मनोयोग वाला अभिनय श्रेष्ठ कम मनोयोग वाला मध्यम और बिना मनोयोग वाला निकृष्ट कोटि का होता है। वह अभिनय को प्रभावशील बनाने के लिए स्त्री और पुरुषों के अभिनय-अलंकारो की चर्चा करता है। ये अलकार प्रकृति और स्वभाव से सम्बन्धित है और बहुत सूक्ष्म हैं। स्त्रियों के अलंकारों का विवेचन करते हुए वह कहता है कि शरीर मे स्वाभाविक रूप से सत्त्व

विद्यमान रहता है। प्रसग आने पर सत्त्व से मन मे भाव उत्पन्न होते हैं भाव से हाव और हाव से हेला, जो स्त्री की चेष्टाओ द्वारा व्यक्त होते हैं। वह इसी प्रकार पुरुषो के स्वभाव को ध्यान मे रखते हुए पुरुषो के अलकार जैस शोभा विलास माधुर्य स्थिरता गम्भीरता उदारता धैर्य आदि के लक्षण और उनके अभिनय मे प्रयोग बताता है। आगे वह अभिनय करते समय अन्य पात्र के भावो से सम्बन्ध बनाने वाली क्रियाओ की चर्चा करता है। अभिनय मे सकेतो तथा प्रतीको से भावो की अभिव्यक्ति के नियम बताता है। बोलने के १२ प्रकारो के निर्देश देता है। पश्चात् ५ प्रकार के तन्मात्रो रूप, रस स्पर्श गन्ध आदि को व्यक्त करने के नियम बताता है। आगे वह स्त्रियो के २२ प्रकार के शीलो की चर्चा करता है जिनसे स्त्रियो के लक्षणो तथा स्वभाव पर प्रकाश डालता है। इसी अध्याय मे वह काम-शास्त्र के अनुसार स्त्रियो के साथ भोग की अनेक विधियाँ बताता है। नायिकाओ का अभिनय करने के लिए आठ प्रकार की नायिकाओ के लक्षण बताता है। कुलीन स्त्री और वेश्या का भेद समझाता है, उनके आचरण और व्यवहार के नियम समझाता है। कामातुर स्त्रियो की मनोदशाओ के रूप स्पष्ट करता है। छिपकर भोग करने का विधान भी समझाता है। दूती के कार्य और लक्षण स्पष्ट करता है। स्त्रियो के काम की दशायें समझाता है। साथ ही प्रेमिका को प्रेमी के स्वभाव को देखकर उसे क्या कहकर सम्बोधित करना चाहिए, उसके अनेक नाम सुझाता है। प्रेमिका को प्रेमी से किस समय कैसी वार्ता और उसे प्रसन्न करने को कैसा शृगार तथा व्यवहार करना चाहिए इस पर प्रकाश डालता है।

अध्याय तेईस

तेईसवे अध्याय का नाम वैशिक लक्षण है। इसमे भी भरत ने स्त्री और पुरुष के सम्बन्धो के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डाला है। पहले वैशिक पुरुष के २० गुण बताये हैं। यदि मनुष्य मे ये गुण नही हैं तो वह स्त्रियो को वश मे नही कर सकता। अनुरक्ता विरक्ता मदनाश्रया स्त्रियो की मनोदशाओ तथा लक्षणो पर प्रकाश डालता है। पश्चात् स्त्री के यौवन की ५ विभिन्न दशाओ का वर्णन किया है कि प्रथम यौवन के समय स्त्रियो के क्या लक्षण होते हैं द्वितीय यौवन की दशा मे कैसा आचरण करने लगती है

आदि-आदि। स्त्रियो की उत्तमा मध्यमा तथा अधमा नामक तीन प्रकृतियो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इसी प्रकार पुरुष की ५ प्रकार की प्रकृतियो का वर्णन किया है। पूरे अध्याय मे स्त्री और पुरुष के मध्य घटित होने वाले छोटे से छोटे व्यवहार का अध्याय मे विस्तार से विवेचन किया गया है।

अध्याय चौबीस

चौबीसवे अध्याय का नाम प्रकृति लक्षण है। इसमे भरत ने सर्वप्रथम उत्तम मध्यम और अधम प्रकृति के लक्षणो पर प्रकाश डाला है। पश्चात् नपुंसक तथा वनवासी जातियो,शिकारी आदि की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट किया है। आगे पुरुषो के गुण और प्रकृति के अनुसार चार प्रकार के नायको के लक्षण बताये हैं। इसी प्रसग मे आगे चार प्रकार के विदूषको के लक्षणो का वर्णन किया गया है। नायक और नायिका के प्रसग को आगे बढ़ते हुए भरत ने अभिनय के लिए स्त्रियो के विभिन्न रूपो का वर्णन किया है।साथ ही सब लक्षण बताये हैं। इसी अध्याय मे राजा सचिव, प्राडविवाक आदि पात्रों के लक्षणो पर भी प्रकाश डाला गया है।

अध्याय पच्चीस

पच्चीसवे अध्याय का नाम चित्राभिनय है। इसमे भरत ने अभिनय के लिए प्रतीको की विशद् योजना की है। वह प्रतीकों के द्वारा चन्द्रमा की चाँदनी दिखाने की विधि बताता है सूर्य की प्रखरता छाया पेड जंगल सरोवर गृह नक्षत्र विभिन्न ऋतुएँ,जैसे-ग्रीष्म शिशिर वसन्त वर्षा पर्वत नदियाँ, आकाश पाताल आदि दिखाने के लिए प्रतीको की योजना करता है। वह पृथ्वी से सम्बन्धित,आकाश से सम्बन्धित पशु-पक्षियों से सम्बन्धित, पेड-पौधों से सम्बन्धित प्रतीकों के निर्देश देता है। लाखो और करोडों की संख्या दिखाने के लिए भी वह हाथों के साकेतिक प्रतीक बताता है। तोता, मैना, हाथी बैल शेर के लिए वह प्रतीक निर्धारित करके उनके भाषण की विधि बताता है। इसी सन्दर्भ में वह जनान्तिक और अपवारित विधियों पर प्रकाश डालता है। बाद में मरणकाल की वाणी के लक्षण, बालक की वाणी,वृद्ध की वाणी तथा रोगी व्यक्ति की वाणी का अन्तर समझाता

है। आगे वह विषवेग की अवस्थाओ का वर्णन करता है और निर्देश देता है कि अभिनय करते समय इन अवस्थाओं के अनुसार ही पात्र को अभिनय करना चाहिए।

अध्याय छब्बीस

छब्बीसवे अध्याय का नाम प्रकृति-लक्षण है। इसमे भरत ने मनुष्य की नही अभिनय करने वाले पात्र की अभिनय-प्रकृति का विवेचन किया है। बताया गया है कि पात्र की अनुरूपा विरूपा तथा रूपानुरूपा नामक ३ प्रकार की प्रकृति हुआ करती है। पात्र को चूँकि कभी सज्जन व्यक्ति की कभी राक्षस की कभी गधा ऊँट तथा हाथी आदि की भूमिका करनी पडती है। अत पात्र की प्रवृत्ति के रूप बदल जाते हैं। पशुओ की भूमिका के लिए मुखौटेलगाने पड़ते हैं राक्षस आदि के लिए अनेक भुजाये मुख आदि लगाने पडते हैं। पात्र की सहज भूमिका अनुरूपा विपरीत स्वभाव की भूमिका विरूपा तथा पशु आदि की भूमिका को रूपानुरूपा प्रकृति कहा गया है। भरत कहता है कि पात्र जो भूमिका करता हो, उसे स्वभाव को त्यागकर परभाव मे प्रवेश करना चाहिए। मच पर प्रवेश से पूर्व पात्र को चाहिए कि वह परपात्र का मानसिक स्मरण करे और उसी की वाणी तथा आंगिक चेष्टाओ को सम्पन्न करे। आगे वह प्रयोग के सुकुमार और आबिद्ध नामक दो भेद करता है। अन्त मे आचार्य के छ गुण तथा शिष्य के छ गुण बताता है।

अध्याय सत्ताईस

सत्ताईसवे अध्याय का नाम सिद्धिव्यजक लक्षण है। इसमे भरत स्पष्ट करता है कि नाटक वस्तुत नाटक नहीं प्रयोग है। वह शास्त्र मे अन्य स्थानों पर भी नाट्य-प्रदर्शन के लिए प्रयोग शब्द का ही इस्तेमाल करता है। उसमें कहता है कि दैवीय और मानुषी दो प्रकार की सिद्धियाँ हुआ करती हैं। सिद्धियो का अर्थ है प्रदर्शन की सफलता। कभी-कभी दैवीय प्रकोप से बना बनाया काम चौपट हो जाता है। मच पर अचानक चींटियाँ निकल आवे पतगे पैदा हो जाये अथवा दर्शको मे कोई पशु प्रवेश कर जाए। मानुषी सिद्धियाँ शरीरी वचन की तथा रस के अनुकूल गायनवादन की होती हैं।

 १२-९-७५

आगे वह आत्मसमुत्थ तथा परसमुत्थ नामक दो प्रकार की घातो की चर्चा करता है। सवाद भूल जाना ध्यान भग हो जाना असावधानी के कारण चोट लग जाना आत्मसमुत्थ तथा दूसरे पात्र द्वारा गलत सवाद बोलकर पात्र को भटकाना किसी ईर्ष्यावश उसके काम मे बाधा डालना परसमुत्थ घात कहलाती है। इसके बाद वह दस प्रकार के प्राश्निको की नियुक्ति का निर्देश देता हे। किसी विषय पर विवाद होने पर प्राश्निक से निर्णय लेना चाहिए।प्राश्निकों मे वह याज्ञिक से लेकर अस्त्रचालक सेवक और वेश्या तक को प्राश्निक के रूप मे नियुक्त करने का निर्देश देता है। वह दर्शको के लक्षण भी शास्त्र मे बताता है।अन्त मे वह प्रयोग प्रस्तुत करने के समय बताता है कि दिन तथा रात्रि में प्रदर्शन किस समय करने चाहिए।

अध्याय अट्ठाईस

अट्ठाईसवे अध्याय का नाम आतोद्य-विधान हैं। यहाँ नाटयशास्त्र मे गान्धर्व विद्या शब्द का प्रयोग किया गया है। नाटयशास्त्र के रचनाकाल के समय तक सगीत शब्द शायद प्रचलित नही हुआ था। इस प्रसग मे वह सबसे पहले आतोद्य अर्थात् वाद्य-यन्त्रो के बारे मे कहते हैं कि वाद्य चार प्रकार के होते हैं। इन्हें तत् अवनद्ध घन तथा सुषिर वाद्य कहा गया है। ततवाद्य या तन्त्री वाद्य वे होते हैं,जिनमे तार या तात आदि से आवाज निकाली जाती हे। खाल से मढे हुए सारे वाद्य अवनद्ध कहलाते हैं धातु के बने मंजीरे झाँझ आदि सारे वाद्य घन कहलाते हैं और फूँक से बजने वाले सारे वाद्य सुषिर कहलाते हैं। इनके तीन प्रकार के प्रयोग बताकर भरत कुतप-विन्यास की चर्चा करता है कि प्रयोग के समय वाद्य-वादको तथा गायक-गायिकाओ को किस प्रकार बैठना चाहिए। शास्त्रकार इसके बाद गान्धर्वविद्या के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालता है। सात स्वर मूर्च्छनाएँ तथा उनकी जातियो का विस्तार से विवेचन करता है।

अध्याय उन्तीस

उन्तीसवे अध्याय का नाम रस-जाति लक्षण है। इसमे वह रस के अनुकूल गान्धर्व की जातियों का विवेचन करता है। गान्धर्व के वर्ण और अलंकारो पर विस्तार से प्रकाश डालता है। गीतो के अलग-अलग लक्षण

और उनका प्रयोग बतलाता है। पश्चात् गान्धर्व से सम्बन्धित चार प्रकार की धातुओ की चर्चा करता है। इसके बाद आश्रावण अर्थात् वाद्य आदि मिलाने के नियम बताता है। तार के वाद्य तथा खाल के वाद्य मिलाने के नियम बताता है। अन्त मे विपची अर्थात वीणा आदि के प्रयोग के नियमो का निर्देश करता है।

अध्याय तीस

तीसवे अध्याय का नाम सुषिर लक्षण है। इसमे सुषिर अर्थात् फूंक से बजनेवाले वाद्य यन्त्रो के लक्षणो पर प्रकाश डालता है। सुषिर वाद्यो मे वशी की रचना तथा उसे बजाने के लिए अगुली-सचालन की विधियाँ बताता है। अन्त मे वशी से निकलने वाले स्वरो का विधान स्पष्ट करता है।

अध्याय इकत्तीस

इकत्तीसवे अध्याय का नाम तालाध्याय है। इसमे वह ताल से सम्बन्धित छोटे से छोटे अग पर प्रकाश डालते हैं। ताल और लय का सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं। ताल की उत्पत्ति बताते हुए कहते हैं कि दो से विभाजित तथा तीन से विभाजित होने वाले ताल के दो मुख्य रूप हैं। ताल-वादन के लिए पाँच प्रकार के हाथ चलाने का विधान,समझाते हैं। ताल के अनेक प्रकार समझाते हुए अगुलियो को चलाने की विधि पर प्रकाश डालते हैं।आगे वह आसारित विधान लय बढाने और सम पर मिलाने के नियम समझाते हैं।कण्डिका का स्वरूप बताते हुए गीतो के अंग रूप मे ताल का प्रयोग स्पष्ट करते हैं।

अध्याय बत्तीस

बत्तीसवे अध्याय का नाम ध्रुवाध्याय है। ध्रुवा के लक्षणो की चर्चा से यह अध्याय प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में ध्रुवा की जातियो का स्वरूप स्पष्ट करने के बाद ११० प्रकार के ध्रुवा-छन्दो के नाम उनकी रचना के नियम तथा प्रत्येक छन्द का शौरसेनी मे उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। आगे गान की ५ विधियो पर प्रकाश डाला गया है। ध्रुवा-प्रयोग के नियम बताये गये हैं और अन्त मे ध्रुवा-गान के साथ वाद्यो के वादन तथा उनके स्थापन के विधान पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय तैतीस

तैतीसवे अध्याय का शीर्षक गुण-दोष-विचार है। इसमे गायक गायिकाओ तथा वाद्य-वादको के गुण-दोषो का विवेचन किया गया है। यह छोटा सा अध्याय है किन्तु इसमे भरत ने बहुत बारीकी से गायक तथा वादको के गुण-दोषो पर विचार किया है।

अध्याय चौतीस

चौतीसवे अध्याय का नाम पुष्कराध्याय है। इसमे अवनद्ध अर्थात् खाल के वाद्यो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे पहले प्रकाश डाला गया है।अवनद्ध-वाद्य के भेदो का वर्णन है तथा त्रिपुष्कर विधि का विवेचन किया गया है। अवनद्ध वाद्यो को बजाने की ४ प्राचीन विधियो का विवेचन है।अवनद्ध को पुष्कर क्यो कहा गया है इसका विवेचन करते हुए उसके वादन के ३ प्रकारो पर प्रकाश डाला गया है। वादन से सम्बन्धित करण और वादन की १८ विधियो के नियम बताये गये हैं। सुन्दर वाद्य के लक्षण बताने के बाद वाद्य पर चढाने के लिए अच्छे और खराब चमडे के लक्षण बताये गये हैं। अन्त मे अवनद्ध-वाद्य बजानेवाले के गुण बताये गये हैं।

अध्याय पैतीस

पैतीसवे अध्याय का नाम भूमिका-विकल्पन है। इसमे मच पर सामने तथा नेपथ्य मे कार्य करने वाले लगभग २० कर्मियो के परिचय दिए गये हैं। इनमे बढई धोबी रूप-सज्जाकार पुष्प-सज्जाकार नायक नायिका विदूषक नान्दी कुशीलव तौर्यत्रिक आदि के कामो का ब्यौरा और लक्षण बताये गये हैं।

अध्याय छत्तीस

छत्तीसवे अध्याय का नाम नाटयशाप है। इसमे पुन कथा-शैली देखने को मिलती है। जैसे पहले से पॉचवे अध्याय मे कथा-शैली के द्वारा नाटयवेद के महात्म्य का वर्णन किया गया है। ऋषि-मुनि भरत से प्रश्न करते हैं और भरतमुनि उन्हे कथा सुनाते हैं कि ऋषियो ने मुझे और मेरे पुत्रो को शाप दिया कि तुम शूद्र हो जाओ और हमे पचनद प्रदेश से बाहर निकाल दिया

गया। हम लोग तब दक्षिण मे अनार्य राजा नहुष की शरण मे आकर बस गये। इसी अध्याय मे भरत ने उन ऋषियो के नाम दिए हैं जिन्होने भरत से 'नाटयशास्त्र' सुना था। इनमे वाल्मीकि विश्वामित्र वशिष्ठ अगिरा पुलस्त्य गौतम कश्यप उशना बृहस्पति दुर्वासा आदि के नाम दिए गये हैं।

अध्याय सैतीस

सैतीसवे अध्याय का नाम गुह्यतत्त्व कथन है। इसमे भरत ने कथा द्वारा स्पष्ट किया है कि किस प्रकार हम लोग शाप-मुक्त हुए और अन्त मे स्वर्गलोक को गये। यह भी कहा गया है कि मेरे बाद इस शास्त्र का कथन कोहल वत्स शाण्डिल्य तथा धूर्तित नामक मेरे शिष्य करेगे। यह भी कहा गया है कि इसके देखने से जप तथा दान का फल मिलता है और दर्शको को मोक्ष प्राप्त होता है।

यहाँ बडी सरलता से हमने 'नाटयशास्त्र' के सैतीस अध्यायो के विषयो का विवरण प्रस्तुत कर दिया है। सत्य यह है कि यह विवरण सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। इस शास्त्र के एक-एक श्लोक मे एक-एक सूत्र मे इतनी बारीकियाँ छिपी हुई हैं कि उन पर अलग से ग्रन्थ पर ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

कला और साहित्य का कोई अग ऐसा नही है जिस पर इस ग्रन्थ मे न लिखा गया हो। विदेश के लोग अरस्तू के **'द पोइ।तक्स'** पर गर्व करते हैं। इसलिए कि **'द पोइतिक्स'** ईसा के जन्म से लगभग ४०० वर्ष पूर्व लिखा गया था। **नाट्यशास्त्र** उससे भी हजारो साल पुराना है। साथ ही कला काव्य और बहुत से शिल्पो की सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि भारतीय ही नही जर्मन फ्रैंच अमरीकन तथा इग्लैण्ड के विद्वानो ने भी इसका अध्ययन किया है इस पर लिखा है और इसके महत्व को स्वीकार किया है।

इसके सैतीस अध्यायो मे भारतीय सस्कृति के स्वर्णिम इतिहास के रहस्य छिपे हुए हैं। वैदिक काल से पहले की सभ्यता और कला के रूप की कालिन्दी बह रही है भारतीय धर्म और दर्शन की कहानी सजी हुई है और

आदिम सभ्यता से आज तक के मानव समुदाय के विकास की यात्रा के विभिन्न सोपान दिखाई देते हैं।

कहा जा चुका है कि 'नाट्यशास्त्र' के प्रथम पाँच और अन्तिम दो अध्यायो की लेखन-शैली अलग तरह की है। इन अध्यायो मे ग्रन्थ का धार्मिक दृष्टि से महत्व स्थापित किया गया है। लगता है जब भारतीय समाज मे धर्म का महत्व इतना अधिक बढ गया कि इसके बिना जीवन का कोई भी काम नही हो पाता था तब इस ग्रन्थ को लौकिक महत्ता प्रदान करने की दृष्टि से इस वर्ग के किसी व्यक्ति ने इसे धार्मिक स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से इसके प्रारम्भ और अन्त मे कुछ अध्याय जोड दिये।

एक तो इन अध्यायो की लेखन-शैली मे प्राय अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया है और दूसरे इनका स्वरूप ठीक पुराण की कथाओ जैसा है। इनको लिखते समय लेखक के मन मे धार्मिक महत्व को प्रतिष्ठित करने की भावना इतनी प्रबल रही है कि वह इसे **यज्ञ के समान** कहता है। इसे धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष ही नही और जाने क्या-क्या फल प्रदान करने वाला घोषित करता है। एक स्थान पर तो वह यहाँ तक कह देता है कि जहाँ तक नाट्य-प्रदर्शन की ध्वनि जाती है वहाँ तक देवता स्वय आकर उपस्थित हो जाने हैं। वह स्नान और जप से भी अधिक फल प्रदान करने वाला नाट्य को बताता है।

इसके अलावा ग्रंथ मे जितनी विषय-वस्तु बचती है वह विशुद्ध रूप से कला और काव्य के तकनीक से सम्बन्धित है। उस तकनीक के इतने अंग और उपाग हैं उनका विवेचन इतना सूक्ष्म और सटीक है कि छोटी से छोटी बात को देखकर भी आश्चर्य होने लगता है।

ग्रंथ में हर विषय के रहस्यों की परत पर परत खुलती जाती हैं, नये-नये तथ्य सामने आने लगते हैं और लगता है कि आधुनिक युग के विकासवादी चिन्तन की पहुँच अभी भरतों के चिन्तन से बहुत पीछे है।

इस कथन का प्रमाण पाठकों को आगे स्वय मिल जायेगा कि भरत एक शब्द को लेकर उससे सम्बन्धित विषय-वस्तु का विस्तार कितने वैज्ञानिक रूप से करता है।

यो देखने मे लगता है कि नाटयशास्त्र भारत के प्राचीन धर्म-ग्रन्थो की तरह एक कथा सुनाने वाला ग्रन्थ है किन्तु उसका प्रारम्भिक कथा वाला भाग उसमे जोडा हुआ क्षेपक है। उस भाग के कारण ही ग्रन्थ के **विधि** और **शास्त्र** दो भाग हो जाते है। विधि-भाग पूर्णत धार्मिक अनुष्ठान की जटिल क्रियाओ के कठोर निर्देश प्रस्तुत करता है। इन क्रियाओ मे वह प्रयोग कर्त्ता को स्वेच्छा से काम करने की किंचित भी अनुमति नही देता साथ ही यह चेतावनी देता है कि इन क्रियाओ की उपेक्षा करने से हानि होगी।

छठवे अध्याय से शास्त्र प्रारम्भ होता है। उसके बाद शास्त्रकार प्रयोगकर्त्ताओ को स्थान-स्थान पर छूट देने लगता है कि इतना मैने बता दिया देश-काल को देखते हुए प्रयोगकर्त्ता इसमे आगे स्वय जोड ले। कही कहता है कि बुद्धिमान लोगो को चाहिये कि वे इसका प्रयोग अपनी समझ के अनुसार लोक को देखते हुए कर ले। यद्यपि भरत का विवेचन हर विषय मे परिपूर्ण और वैज्ञानिक रूप से किया हुआ दिखाई देता है।



अध्याय दो

भरत और उनका शास्त्र

सर्वविदित है कि भगीरथ कठोर तपस्या करके पतितपावनी गगा को पृथ्वी पर लाये थे। भगीरथ से पूर्व उनके पूर्वज अशुमान तथा सगर भी प्रयत्न करते रहे थे। इसी प्रकार भरत लोगो ने कठोर तप करके गायन वादन नर्तन की त्रिवेणी को सार्वजनिक कल्याण के लिए लोक मे प्रवाहित किया। कला की इस सुधामय सरिता ने लोक-हृदय को आल्हाद और आनन्द के रस से आप्लावित कर दिया। धर्म जाति वर्ग तथा प्रान्त के भेदो को भूलकर सारा लोक भरतो की इस भागीरथी मे आनन्द के महोत्सव मनाने लगा। भरतो ने सारे देश को सच्चे अर्थो मे भावात्मक स्तर पर जोडा क्योकि भरतो की कला के स्रोत भाव और रसो से ही फूटे थे।



वेदाध्यात्मोपपन्न तु शब्दच्छन्दस्समन्वितम् ।
लोकसिद्ध भवेत्सिद्ध नाट्य लोकात्मक तथा ।।

२५-१२१

नाटक चाहे वद या अध्यात्म से उत्पन्न हो वह कितने ही सुन्दर शब्दो और छन्दो मे रचा गया हो वह तभी सफल माना जाता है जब लोक उसे स्वीकार कर ले क्योंकि नाटक लोकपरक होता है।

कहा जा चुका है कि भरतमुनि कृत **'नाट्यशास्त्रम्'** विश्व के साहित्य की एक प्राचीनतम सम्पदा है। सैंतीस अध्यायों के इस ग्रन्थ में लगभग छः हजार श्लोक हैं। एक दृष्टि से यह कला और साहित्य का विश्व-कोश है।

'नाटयशास्त्र' के रचनाकार का नाम भरतमुनि है। अधिकांश लोग यही समझते हैं कि प्राचीनकाल में भरतमुनि नामक किसी व्यक्ति ने **नाट्यशास्त्र** की रचना की थी।

सत्य यह है कि **नाट्यशास्त्र** का लेखक भरतमुनि कोई एक व्यक्ति नहीं था। **नाट्यशास्त्र** को न जाने कितने भरतों ने कितने समय में लिखा था। वस्तुतः 'नाट्यशास्त्र' न तो किसी एक युग में लिखा गया था और न उसे किसी एक भरत ने लिखा था।

नाट्य के सन्दर्भ में भरत एक जातिवाचक शब्द है। नाटयकोविद भरतों की परम्परा ईसा के जन्म से कई हजार वर्ष पूर्व भारत में विकसित ही नहीं लोकप्रिय हो चुकी थी। भरत लोग नाट्य-विद्या के विशेषज्ञो के रूप में लोक में प्रसिद्धि पा चुके थे। ये लोग गायन वादन, नर्तन तथा अभिनय में पारंगत होते थे। प्राचीनकाल की गुरू-शिष्य-परम्परा के अनुसार इन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी रंगकर्म की समस्त विधाओं का सर्वांगीण प्रशिक्षण दिया जाता था। यह प्रशिक्षण श्रुत और कण्ठ-परम्परा पर आधारित होता था। गायन वादन, नर्तन तथा अभिनय का सम्बन्ध प्रयोग पक्ष से जुड़ा होता था। अतः इस क्षेत्र में श्रुतज्ञान के साथ-साथ प्रशिक्षण लेने वालों को व्यावहारिक शिक्षा लेनी पडती थी। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि इस विद्या का मूल

सम्बन्ध प्रयोग से था। अत शास्त्रगत् नियम और निदेश कण्ठ करने के बाद इस विद्या के गुणी लोगों का मुख्य सम्बन्ध प्रयोगशीलता से जुड जाता था।

शास्त्र के नियम जीवन में एक बार याद करने के बाद शास्त्र का काम उनके लिए समाप्त हो जाता था। बाद के जीवन मे सीखी हुई विद्या से ही काम चलता था। इसीलिए न उन्हे ग्रन्थ-रचना की अपेक्षा थी और न उनके सग्रह की चिन्ता उनका ग्रन्थ उनके कण्ठ मे विद्यमान रहता था।

'नाटयशास्त्र' मे अनेक उदाहरण ऐसे देखने को मिलते हैं जिनसे भरतों की प्राचीन परम्परा का पता लगता है।

नाटशास्त्र' के १२ वे अध्याय में पात्रो द्वारा मच पर चलने की विभिन्न प्रकार की गतियो का निर्देश दिया गया है। द्रुत मध्य तथा विलम्बित लय में किस पात्र को किस प्रकार मच पर प्रवेश करना चाहिये। इसके सम्बन्ध में शास्त्रकार ने विस्तार से नियम बताये हैं। शास्त्रकार ने देवता मनुष्य तथा दानवो की मच पर चलने की रीतियाँ बताई हैं। उत्तम मध्यम और अधम प्रकृति के पात्रो के मच पर चलने के निर्देश दिए हैं। शोक से दुखी हर्ष से उछलता हुआ आवेग तथा सम्भ्रम से परेशान आदमी के चलने के नियम बताये हैं। यह भी बताया है कि बुखार से तपते आदमी की चाल कैसी होती है, बूढे आदमी को मच पर कैसे चलना चाहिए और गर्मी से तपते अथवा वर्षा में भीगे हुए आदमी की चाल का अन्तर कैसा होता है। चलने की विधियाँ बताता हुआ वह श्लोक सख्या २० में कहता है कि पात्रो को अपने पाँवों का संचालन इस प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार प्राचीन काल से भरत लोग मच पर पद-सचार करते रहे हैं। या फिर यह कहें कि शास्त्रकार निर्देश देता है कि भरत लोगो द्वारा प्रयोग की जाने वाली गतियो के अनुसार पाँव चलाने की विधि अनुकरणीय है।

शास्त्र के तेरहवे अध्याय में प्रवृत्तियो और वृत्तियों की चर्चा की गई है। इसमें वाचिक अभिनय से सम्बन्धित वाचनशैली को शास्त्रकार वृत्ति कहता है। इस प्रसग मे श्लोक सख्या ६६ में कहा गया है कि प्रयोग स्वेच्छा से न करके उसमें भरतो की शैली का अनुकरण करना चाहिए क्योकि पूर्वकाल

मे भरतो द्वारा ही प्रयोग मे '**कुतप**' और '**नाट्य**' प्रारम्भ किए गये थे।

'नाटयशास्त्र' के बीसवे अध्याय मे भारती वृत्ति' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि बोलने की जो शैली वाक प्रधान है जिसका प्रयोग प्राय पुरुष करते हैं स्त्रियो को इसका प्रयोग वर्जित है और जो मूलत सस्कृत पाठ्ययुक्त है उसे भारती वृत्ति कहा जाता है क्योकि इसका प्रयोग स्वनामधारी भरत लोग किया करते थे।

इस प्रकार शास्त्र के सत्ताईसवे अध्याय के श्लोक सख्या ७० मे कहा गया है कि कभी-कभी प्रयोग के समय भरतो मे शास्त्र की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए स्पर्धा छिड जाया करती थी। ऐसी स्पर्धा के समय 'प्राश्निक' की नियुक्ति की जाती थी और वह अन्तिम निर्णय देता था।

शास्त्र के पैतीसवे अध्याय मे भूमिका विकल्पन के अन्तर्गत रगकर्मियो के नाम,उनके काम और विशेषताओ का वर्णन किया गया है। इसी तालिका मे भरतो की गणना भी एक रगकर्मी के रूप मे की गई है। भरत के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति समस्त प्रकार के वाद्य बजाना जानता हो हर प्रकार की भूमिकाएँ करने मे प्रवीण हो और नाट्य की समस्त विधियो का ज्ञाता हो उसे **भरत** कहा जाता है।

भरतो की परम्परा -

शास्त्र मे अनेक स्थलों पर ऐसे छन्दो को प्रस्तुत किया गया है जिन्हे शास्त्रकार वश-परम्परा से प्राप्त बताता है। इससे स्प्ष्ट है कि भरतो की परम्परा बहुत प्राचीन थी। इस बात के सैंकडों प्रमाण हैं कि नट-सूत्रो की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी, नट-सूत्रो को वैदिक चरणो जैसी पवित्रता प्राप्त थी। नट-सूत्र **शैलालक** ऋग्वेद का चरण स्वीकार कर लिया गया था। 'आपस्तब' और 'श्रौत-सूत्र' मे **शैलालक ब्राह्मण** का उल्लेख है।कात्यायन ने इस चरण के अध्येता छात्रों को '**शैलाली**' कहा है। काशिकाकार ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि '**शिलालिन**' ओर '**कृशाश्व**' द्वारा चरणों का जो विकास हुआ उसे प्राचीन काल से आम्नाय की पवित्रता प्राप्त थी। आम्नाय का अर्थ उस काल में पवित्र

सम्प्रदाय था इसलिए भरत अपनी परम्परा से सम्बन्धित व्यक्ति और उनके द्वारा लिखित सामग्री को वश-परम्परा की सज्ञा देता है। शास्त्र के सैतीसवे अध्याय के श्लोक २३ मे कहता है कि 'मुझसे बचा हुआ शास्त्र मेरे वशज कोहल वत्स शाण्डिल्य तथा धूर्तित भविष्य मे कहेंगे।' **भरतानां च वंशोऽयं** इन नामो का उल्लेख दामोदर गुप्त ने 'कुट्टनीमतम्' में भी किया है। साथ ही हेमचन्द्र के **काव्यानुशासन** तथा **रसार्णवसुधाकर** आदि ग्रन्थों में भी इन नामो की चर्चा हुई है।

इसी प्रकार शास्त्र के प्रथम अध्याय मे वह अपने सौ पुत्रो के नाम गिनाता है। यथार्थ मे वे सौ पुत्र न होकर उसके शिष्य हैं जिन्हे भरत परम्परा का वशज मानना चाहिये। इसी प्रकार वह अपने पूर्व आचार्यों के नाम भी विभिन्न प्रसंगों मे गिनाता है।

नाट्यशास्त्र के आधार पर बाद में सैंकडों शताब्दियों तक अनेक ग्रन्थो की रचना होती रही। आचार्य धनजय का '**दशरूपक**' हो अथवा रामचन्द्र-गुणचन्द्र का '**नाट्यदर्पण**'। सभी आचार्यों ने भरतों की परम्परा का उल्लेख किया है। सस्कृत के नाटक-साहित्य से सम्बन्धित अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमे भरत शब्द का प्रयोग बहुवचन में देखने को मिलता है। जैसे भरतादि भरतजन भरतों के द्वारा भरत-वर्ग आदि।

नाट्यशास्त्र में उपलब्ध इन प्रमाणों को अन्त साक्ष्य की श्रेणी में रखा जायेगा। 'नाट्यशास्त्र' के अलावा अन्य ग्रन्थों में भी ऐसे प्रमाण देखने को मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि भरतो की परम्परा बहुत प्राचीन थी और भरत लोग रगकर्म के विशेषज्ञ थे।

'**ऐतरेय ब्राह्मण**' के २-२५ में लिखा है कि 'भरत लोग सात्त्विक वृत्ति का प्रयोग करते थे और तूर्यविषयक सग्रहों का आधार ग्रहण करते थे।' उस काल में **संग्रह** वस्तुत शास्त्र को कहते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण' की रचना से पूर्व ही भरतों की विद्या के ग्रन्थ रचे जा चुके थे जिनके आधार पर वे लोग गायन-वादन का कार्य करते थे। '**याज्ञवल्क्यस्मृति**' के ३-१६२ में भी जीव और आत्मा का विवेचन करते हुए कहा गया है जिस प्रकार भरत लोग नाना प्रकार के रूप बदल कर

भिन्न पात्रों का अभिनय करते हैं उसी प्रकार आत्मा भी एक जीव से निकल कर अन्य जीव का रूप धारण कर लेता है।

शारदातनय कृत '**भाव प्रकाश**' के छठवें अध्याय के ७१वें श्लोक में कहा गया है कि भरत से पहले **वृद्धभरत** थे। उन्होंने बारह हजार श्लोकों का '**नाट्यवेदागम्**' नामक ग्रन्थ लिखा था। भरत ने छः हजार श्लोकों में उसे संक्षिप्त कर 'नाट्यशास्त्र' लिख डाला। आज जब हम 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरतमुनि को ही बहुत प्राचीन मानते हैं, तब वृद्धभरत पता नहीं कितने और प्राचीन रहे होंगे? इस बात से यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि भरतों की परम्परा प्राचीन ही नहीं अत्यन्त प्राचीन रही है।

इस बारे में यह भी समझ लेना जरूरी है कि भरत लोगों को प्राचीन काल में शूद्र-वर्ग का माना जाता था। '**अमरकोश**' देखें या '**मेदिनीकोश**' '**वाचस्पत्यम्**' देखें या '**शब्दकल्पद्रुम**'। भरत के पर्यायवाची शब्दों में **नट**, **जायाजीवा**, **शैलूषीपुत्र** आदि नाम गिनाये गये हैं यह उस समय की बात है, जब भारतीय सभ्यता में वर्ण-व्यवस्था का कठोरता से पालन किया जाता था। समाज को ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों में बाँटा हुआ था।

मनु ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ '**मनुस्मृति**' में नटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न सन्तान को नट कहा जाता है। दो वर्णों के संयोग से उत्पन्न होने के कारण मनु ने नटों की गिनती शूद्र-वर्ग में की है। भरत उस समय शूद्र-वर्ग के लोग थे।

नाट्यशास्त्र या भरत शास्त्र ?

प्रायः लोग समझते हैं कि 'नाट्यशास्त्र' नाटक का शास्त्र है। यह भ्रम लोगों को 'नाट्य' शब्द के कारण होता है। बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि नाट्यशास्त्र में 'नाट्य' शब्द का अर्थ नाटक नहीं है। सच पूछा जाय तो नट, नाट्य तथा नाटक शब्दों में ध्वनि की इतनी अधिक समानता है कि लोग नाट्य शब्द का अर्थ नाटक समझते हैं। नट, नाट्य और नाटक

तीनो ही शब्द सस्कृत भाषा के हैं। इनमे नट शब्द सबसे अधिक प्राचीन है। पाणिनि का परिचय नट शब्द से। पाणिनि ने अपनी पुस्तक '**अष्टाध्यायी**' मे नट-सूत्र की चर्चा की है-'पाराशर्य शिलालिभ्याम् भिक्षुनट सूत्रयो।' इस सूत्र मे पाणिनि ने यह भी स्वीकार किया है कि उसके समय मे नटो के सूत्र प्रचलित थे।

महर्षि पाणिनि का काल ईसा पूर्व छटवी सातवी शताब्दी माना गया है। बौद्ध और जैन धर्म पाणिनि के बाद शुरू हुए थे। पाणिनि ने यह स्वीकार किया है कि नटो के सूत्र उसके काल मे प्रचलित थे। इसका मतलब यह हुआ कि ये सूत्र उससे पहले ही बन चुके थे। अब यह देखना जरूरी है कि पाणिनि से पहले नट शब्द का अर्थ या स्वरूप क्या था ?

पाणिनि से पहले देश मे जो भाषा प्रचलित थी उसे आर्ष-प्राकृत के नाम से जाना जाता है। पाणिनि ने आर्ष-प्राकृत भाषा को ही सुसंस्कारित करके इसे सस्कृत का रूप दिया था। आर्ष-प्राकृत भाषा में नट के लिए '**णट्ट**' शब्द का प्रयोग किया जाता था। '**णट्ट**' का अर्थ आर्ष-प्राकृत मे **नाचनेवाला**' था। इसे सस्कृत में नर्तक कहा गया है। श्री हरगोविन्द सेठी और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने आर्ष-प्राकृत के '**णट्ट**' शब्द का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है '**णच्चन्ति णट्टा, पमणन्ति बिप्पा**' अर्थात् **नट नाचते हैं और विप्र पढ़ते हैं**।

संस्कृत मे इस शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा गया है कि नट धातु में '**अण**' प्रत्यय लगाकर उसकी रचना हुई है, जिसका अर्थ है नर्तक। इसी शब्द से 'नटनम्' शब्द बना है, जिसका अर्थ है-नर्तन या नाचना। संस्कृत भाषा के सभी कोशों में स्पष्ट किया गया है कि नट से नाट्यम् शब्द की रचना होती है और नाट्यम् का अर्थ नृत्य करना है।

नट एक प्राचीन जाति -

प्राचीन भारत मे नट नामक एक प्राचीन जाति थी। ये लोग ढोल बजाकर अपने शरीर के कौतुको से जनता का मनोरंजन किया करते थे। ये घूमने वाली यायावर जाति थी। लय और ताल का इनको स्वाभाविक ज्ञान था और अग-विक्षेप अर्थात् शरीर के किसी भी भाग को किसी भी दिशा में



चिदम्बरम के पट्ट मे नटो का कौतुक



सीकर से प्राप्त नृत्य-पट्ट। इसमे क्रमश अवनद्ध धन तथा सुषिर (ढोल मजीरा)
तथा वशी) वादन का दश्य है। समय १० वी शताब्दी।

घुमाने चलाने का इन्हे अभ्यास था। वह भी शरीर को लय के साथ सचालित करने मे इन्हे महारत हासिल थी।

बहुत से विद्वानो ने 'नाट्यशास्त्र' मे वर्णित नट शब्द का अर्थ अभिनेता किया है। इस सम्बन्ध मे यह बात समझ लेनी चाहिए कि नटो का वर्ग पहले अलग था। वाल्मीकि कृत '**रामायण**' मे चाणक्य के '**अर्थशास्त्र**' मे 'नट नर्तक गन्धर्व' शब्दो का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इसका मतलब साफ है कि तब तक समाज मे नट और नर्तक दोनो वर्गों की पहचान अलग थी। यह भी सत्य है कि नटो का वर्ग धीरे-धीरे नाटय-प्रदर्शन से जुडता गया। पतजलि के '**महाभाष्य**' मे एक चर्चा आती है कि मूल प्रदर्शन से पूर्व नटिनी दर्शको के बीच से होकर मच पर जाती थी। दर्शको मे से लोग उससे पूछते **कस्य यूयम, कस्य यूयम**' अर्थात् **नटिनी तू किसकी है ? किसकी है?** और वह उत्तर मे सभी को सिर झुका कर कहती - '**तव तवेति, तव तवेति**' कि **महाराज' मैं आपकी ही हूँ आपकी ही हूँ**। तब वह मच पर जाकर अपने साथियों के साथ कौतुक दिखाती थी।

चिदम्बरम् में एक दीवार पर इस दृश्य का चित्र भी बना हुआ है। पत्थर की खुदाई के चित्र मे दिखाया गया है कि मंच पर दो नट अपने कौतुक दिखा रहे हैं। एक ढोल बजा रहा है एक नाक और बांयी हथेली पर छुरी, रखे हुए हैं। उसके दाहिने हाथ मे एक छुरी है इसी छुरी पर एक उल्टी छुरी खडी हुई है। नट के दाहिने पाँव के अँगूठे पर एक गदा उल्टा टिका हुआ है। इन दुष्कर क्रियाओ के द्वारा वह अपना कौतुक दिखा रहा है। देखिए चिदम्बरम के पट्ट मे नटो का कौतुक वाला चित्र

लगता है प्राचीन काल में प्रदर्शन से पहले '**पूर्वरंग**' के स्थान पर नटो द्वारा ढोल बजाकर शारीरिक व्यायाम के कौतुक दिखाने की परम्परा थी। बाद में नटों ने जब नृत्त और नृत्य की शिक्षा तण्डु से ले ली और अपनी कला को परिष्कृत कर लिया, तब उसे '**पूर्वरंग**' का नाम दे दिया। नटों ने धीरे-धीरे अपनी वृत्ति को विकसित करके इस कला के साथ जोड़ा और जब इस कला का शास्त्र लिखा गया तब वह नटों का शास्त्र होने के कारण '**नाट्यशास्त्र**' कहलाया। इससे पूर्व बहुत समय तक इसका नाम '**भरतशास्त्र**' रह चुका था। बाद में भी बहुत से संस्कृत के आचार्य इसे

कारण



ललित



दण्डपक्ष

नृत्त-प्रशिक्षण की प्रारम्भिक १०८ मुद्राओं में से कुछ मुद्राएं



भुजंगत्रस्तरेचित



नूपुर

करण

नृत्तअभ्यास की मुद्राएं



विद्युतभ्रान्त



अतिक्रान्त



विवर्तित



गजक्रीडित

'नाट्यशास्त्र' न कहकर 'भरतशास्त्र' ही कहते रहे थे।

'नाटयशास्त्र' के पहले अध्याय मे एक कथा है। इसमे कुछ श्रोता मुनिजन भरतमुनि से पूछते हैं कि नाट्य की उत्पत्ति कैसे हुई और उसके कितने अंग हैं? उत्तर में भरतमुनि कहते हैं कि शूद्रो के लिए वेदों का व्यवहार वर्जित था। वेद द्विजातीय थे।अत शूद्र न तो वेदो का पाठ कर सकते थे और न उनको सुन ही सकते थे।

एक दिन देवताओ की प्रार्थना पर देवराज इन्द्र ने ब्रह्माजी से जाकर प्रार्थना की कि कोई ऐसी विद्या दीजिए, जिसमे देखने और सुनने के दोनों गुण हो और जिसका प्रयोग हर वर्ग का आदमी कर सके। ब्रह्माजी ने चारों वेदों और चारो उपवेदों का स्मरण किया और उनसे आठ गुण लेकर **'पचमवेद'** के रूप मे **नाट्यवेद** की सृष्टि की। उसके बाद यह 'पंचमवेद' हमें प्रयोग करने के लिए दे दिया गया। आशीर्वाद के रूप में पितामह ब्रह्मा ने यह भी कहा कि यह यज्ञ के समान फल देने वाला होगा, जप और पूजा की भांति पवित्र होगा।

हमने पितामह ब्रह्मा से कहा कि हमारा प्रयोग सुन्दर तभी बनेगा, जब इसमें स्त्रियां साथ काम करें। ब्रह्मा ने हमें २४ अप्सरायें दीं। एक दिन हमने इन्द्रध्वज समारोह मनाया। इसमें हमने **'अमृतमंथन'** और **'त्रिपुरदाह'** नामक दो प्रयोगों का प्रदर्शन किया। भगवान शंकर ने इन्हें देखा। जब ब्रह्माजी ने उनसे पूछा कि आपको ये प्रयोग कैसे लगे? भगवान शंकर ने कहा कि जो प्रयोग अभी मैंने देखे वे **शुद्ध प्रयोग** थे इन्हें **चित्र-प्रयोग** बनाने से ये और भी सुन्दर हो जायेंगे **चित्र प्रयोग** बनाने के लिए इसमे नृत्य को जोडना चाहिए। ब्रह्माजी ने कहा कि इन्हें नृत्त की शिक्षा दीजिए।भगवान शिव ने अपने शिष्य तण्डु को हमें नृत्त सिखाने का आदेश दिया। हमें तण्डु ने नृत्त और नृत्य की शिक्षा दी उसके बाद हमने इसमें नृत्त को भी जोड़ दिया।

इस कथा से इस कला के ऐतिहासिक विकास की कहानी सामने आती है। पहले नटों का वर्ग उपेक्षित था उन्हें वेदों के प्रयोग का अधिकार नहीं था। बाद में इनका अलग से 'पंचमवेद' बना। पहले इनके प्रयोग में स्त्रियां

सम्मिलित नही थी। बाद मे स्त्रिया भी इनके साथ जुड़ी। पहले इनके प्रयोग मे केवल अभिनय था बाद मे इसमे नृत्य भी जुड गया। यह बात इस प्रसग मे खास-तौर पर ध्यान रखने की है कि 'नाटयशास्त्र' का जन्म पंचमवेद' के रूप मे सभी वर्णों के लिए समानता का अवसर देने के लिए हुआ। इसे प्रारम्भ से ही '**सार्ववर्णिक**' यानी कि सभी वर्णों के लिए तथा '**लोकोपदेशजनन**' अर्थात् लोक मे रहने वाले समस्त प्राणियो को उपदेश देने वाला कहा गया। यह बात भी बहुत साफ है कि इसके रचनाकार भरत थे या यो कहे कि भरतो का इससे शुरू से ही गहरा सम्बन्ध रहा है।

अब यह समझने के लिए काफी चीजे हमारे सामने हैं कि 'नाटयशास्त्र' नटो का शास्त्र है। नटो को शूद्र कहकर आर्य-सस्कृति के पक्षधरो ने अपने से दूर रखा। नट भारतीय मूल के थे अत उन्होने किसी समय स्वय को **भरत** कहना प्रारम्भ कर दिया। पहले यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि भरतो की गणना उस काल में शूद्रो के वर्ग में की जाती थी। इस प्रसग मे यह बात समझ लेना भी जरूरी है कि उस काल मे शूद्र का अर्थ आज के अर्थ से भिन्न था। उस समय जो भी व्यक्ति वह चाहे किसी भी वर्ण का हो स्वेच्छा से कार्य करता था उस पर आचरण-विरुद्ध कार्य करने का आरोप लगाकर उसे शूद्र करार दे दिया जाता था। यहाँ तक कि यदि किसी ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय या वैश्य स्त्री से कोई सतान उत्पन्न होती थी तो उसे वर्ण-सकर होने के कारण शूद्र कहा जाता था। इतना ही नही यदि कोई ब्राह्मण निर्धारित आयु तक अपने पुत्र का यज्ञोपवीत नहीं करा पाता था तो उसके बालक को शूद्र माना जाता था। कुछ परिस्थितियों में उसे **व्रात्य ब्राह्मण** कहा जाता था और व्रात्य को पुरोहित कर्म करने-कराने का अधिकार नहीं होता था। भरतों की परम्परा के मूल में कौन व्यक्ति हुआ जिसके कारण इन्हें शूद्र वर्ग में रखा गया प्रमाणों के अभाव में आज यह कह पाना अत्यन्त कठिन है।

आज का 'नाटयशास्त्र' उन्हीं भरतों की देन है। बात इतनी पुरानी है कि आज यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थ की रचना भरत परम्परा के कितने नाट्यकोविदों ने कितनी सदियों तक की ? इसमें कब-कब कितनी

विधाये और कितने शिल्प जुडते गये ?

इस ग्रन्थ का नाम '**नाट्यशास्त्र**' के बजाय यदि **भरतशास्त्र** होता तो लोगो को यह भ्रम न होता कि यह केवल नाटक का शास्त्र है।

भरतशास्त्र -

कभी वर्षों तक देश मे इसे '**भरतशास्त्र**' कहा जाता रहा था। इस बात के कितने ही प्रमाण मिलते हैं कि इसका नाम 'भरतशास्त्र' भी रहा है। आन्ध्र प्रदेश से एक ग्रन्थ '**आदिभरतशास्त्रम्**' प्राप्त हुआ। इसके लेखक रामचन्द्र योगीराज हैं। वर्तमान मे इसकी एक प्रति मैसूर मे तथा दूसरी भाण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान पुणे में है। इसी प्रकार कबि कण्ठ द्वारा लिखित '**भरतशास्त्र**' नामक एक ग्रन्थ तंजोर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है। यह संस्कृत तथा तेलगू मे लिखा हुआ है और इसमे सारी सामग्री नाट्यशास्त्र की है। 'शिशुपाल-वध' नामक संस्कृत नाटक मे नाट्यशास्त्र को 'भरतशास्त्र' कहा गया है।

आडियार पुस्तकालय मे भी एक ग्रन्थ है जिसका नाम '**भरतशास्त्र**' है। इसके लेखक आचार्य नन्दिकेश्वर हैं। बडौदा के प्राच्य-विद्या-संस्थान में अनेक प्राचीन पाण्डुलिपियां हैं जिनके नाम भरतशास्त्र पर हैं। जैसे -

भरतशास्त्रम्	लेखक	रघुनाथ
भरतभाष्यम	**लेखक**	**नान्यदेव**
भरतलक्षणम्	**लेखक**	**अज्ञात**
भरत-सार-संग्रह	**लेखक**	**चन्द्रशेखर**

एक समय था जब लेखक भी अपने नाम के साथ भरत शब्द का प्रयोग करते थे।जैसे - अर्जुनभरतम्, आदिभरतम् मतंगभरतम् आदि।

विकसनशील ग्रन्थ -

सत्य यह है कि यह एक विकसनशील ग्रन्थ है। इसे न जाने कब-कब कितने लोगों ने लिखा है। आज यह कहना कठिन है कि लिखनेवालो ने इसमें से कब कितना छोडा है और कब कितना जोडा है।

आज यह भी कहना मुश्किल है कि किस शताब्दी से किस काल तक इसकी शिक्षा श्रुत-परम्परा के आधार पर चलती रही और किस युग मे इसका कितना रूप लिपिबद्ध हुआ ? यह भी नही कहा जा सकता कि आज जो 'पाण्डुलिपि' नाट्यशास्त्र की उपलब्ध हैं उसे किस व्यक्ति ने, किस पाण्डुलिपि से, किस काल मे नकल की थी ? लेकिन 'नाटयशास्त्र' का जो रूप आज भी हमे देखने को मिलता है उसकी सामग्री देखकर बुद्धि चकित रह जाती है। जैसा 'भावप्रकाश' के लेखक शारदातनय ने कहा कि इससे पूर्व बृद्धभरत ने 'नाट्यवेदागम' नामक ग्रन्थ लिखा था। उसमें १२ हजार श्लोक थे। उसे सक्षिप्त करके भरतमुनि ने 'नाटयशास्त्र' लिखा जिसमे ६ हजार श्लोक हैं। तब और भी आश्चर्य होता है कि जब छोटे ग्रन्थ का यह हाल है तो बडे का क्या रूप रहा होगा ?

वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' ही आज भारतीय और विदेशी विद्वानो के लिए चुनौती बना हुआ है। इस ग्रन्थ की सामग्री ने जर्मन फ्रान्स इग्लैण्ड आदि के विद्वानों को चकित कर दिया। यहाँ तक कि फारसी के लेखकों तक को इसने प्रभावित किया। पटना के **खुदाबख्श शोध केन्द्र** मे पिछले दिनो मैंने चार **फारसी** मे लिखित पुस्तकें देखीं जिनमें 'नाट्यशास्त्र' के रस और भाव तथा सगीत का वर्णन फारसी भाषा में किया गया है।इनका परिचय इस प्रकार है -

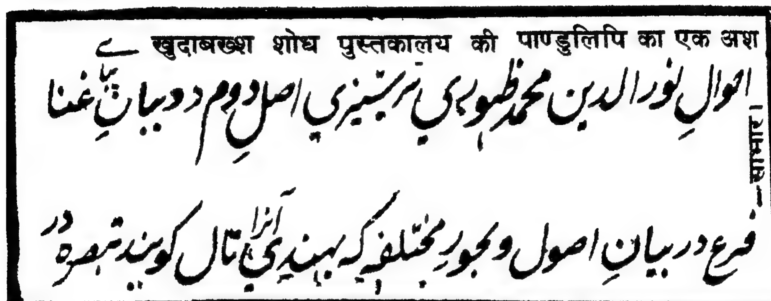
१	**अस्माये राग-रागनी**	लेखक	नूरुद्दीन जहूरीतरशेजी
२	**उसूलन नगमात**	लेखक	गुलामरजा रचना-काल १२२६ हिजरी
३	**खुलासुतुलऐश**	लेखक	मीर हिदायतुल्लाह रचना-काल १२३६ हिजरी
४	**रिसाला दरमौसीकी**	लेखक	अज्ञात

ग्रन्थों का नाम देखने से ऐसा लगा कि इनका सम्बन्ध संगीत से है। लेकिन जब अन्दर खोलकर पढ़ा तो '**रस-भाव**' का विवेचन और नाट्यशास्त्र के '**तालाध्याय**' का मैटर दिखाई दिया। मैं देखकर चकित रह गया। किताबों की लिपि और बयान करने का लहजा फारसी में था, लेकिन

'नाटयशास्त्र' के पारिभाषिक शब्द ठीक उसी प्रकार लिखे गये थे। अस्माए **राग रागनी** का एक छोटा सा नमूना पेश है -

"दरबयाने उसूलो बहूरे मुखतरफा बहिन्दी तालगोयन्द सिंगार रस हास करना रूद्र, वीर भयानक बीभत्स, अदभुत शान्त। कनसिंगारे बीबक बयूक-सजूक"- पृष्ठ ५

सिंगार के बयूक-सजूक संस्कृत के वियोग और सयोग नामक श्रृगार के दो भेद हैं।भरत ने इन्हे सम्भोग-श्रृगार और विप्रलम्भ-श्रृगार कहा है।


खुदाबख्श शोध पुस्तकालय की पाण्डुलिपि का एक अश

احوالِ نور الدین محمد ظهوری ترشیزی اصلِ دوم در بیانِ غنا

فرع در بیانِ اصول و بحورِ مختلفه که بهندی آنرا تال گویند تبصره در

जैसा कहा जा चुका है कि नाटयशास्त्र मे इतनी विद्यायें इतने शिल्प इतने विषय हैं उन पर इतनी बारीकी से लिखा गया है कि उसके एक-एक अध्याय का मैटर लेकर कई-कई किताबे लिखी जा सकती हैं। 'नाटयशास्त्र' के छटवे अध्याय मे एक छोटा सा सूत्र है -

'तत्र विभावानुभाव व्यभिचारि सयोगाद्रसनिष्पत्ति'

इस छोटे से सूत्र की व्याख्या सस्कृत के कितने ही विद्वानो ने की। इस एक सूत्र पर **आचार्य भट्टलोल्लट**, **आचार्य शकुक आचार्य भट्टनायक आचार्य अभिनवगुप्त**, **भट्ट तौत**, **गोविन्द ठक्कर**, **नान्यदेव**, **विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ** ने अपनी-अपनी दृष्टि से अपने विचार प्रस्तुत किए। सस्कृत काल के बाद हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो मे भी बाबूश्याम सुन्दरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बाबू गुलाबराय प0 रामदहिन मिश्र डा0 भगीरथ मिश्र डा0 नगेन्द्र आदि अपने विचार प्रस्तुत कर चुके हैं।

स्पष्ट है कि 'नाटयशास्त्र' की सामग्री इतनी गहरी है कि उस पर सदियो से सैकडो विद्वानो द्वारा कलम चलाई जा रही है और न जाने कब तक चलती रहेगी।

इसका कारण यह है कि इस एक ग्रन्थ मे जब गोते लगाना शुरू करते हैं तो एक के पीछे दूसरा और दूसरे के पीछे तीसरा रहस्य खुलने लगता है। इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु इतनी व्यापक है कि इसमे अध्यात्म दर्शन योग इतिहास भूगोल ज्योतिष मल्ल-विद्या धनुर्विद्या गायन वादन नर्तन अभिनय चित्रकला मनोविज्ञान भाषाशास्त्र ध्वनि-शास्त्र अलकार-शास्त्र छन्द-शास्त्र व्याकरण वैशिकशास्त्र कारुक-शिल्प यान्त्रिकी सौन्दर्यशास्त्र तथा अगणित विद्याओ और शिल्पो का समन्वय है। इसीके साथ इसमे भारतीय सस्कृति का प्राक वैदिककाल से लेकर ईसा की प्रथम शती तक का इतिहास छिपा हुआ है। इस ग्रन्थ की महत्ता का इससे बडा और क्या प्रमाण हो सकता है कि इसने काव्य और कला की दो परम्पराओ को एक साथ जन्म दिया। एक धारा बाद मे **'काव्य-शास्त्र'** कहलाई दूसरी **संगीत-नृत्य-शास्त्र**। इस ग्रन्थ की छाया पर प्रत्येक शताब्दी मे बहुमूल्य ग्रन्थो की रचना होती रही। उदाहरण के लिए कुछ नाम दिए जा रहे हैं जिनसे इसकी गुणात्मकता का पता चलता है। 'काव्यशास्त्र' के क्षेत्र मे इस ग्रन्थ ने नीचे लिखी परम्परा को विकसित किया।

(१) काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट
(२) रसार्णव सिन्धु	सिंह भूपाल
(३) श्रृगार प्रकाश तथा	
(४) सरस्वती कण्ठाभरण	भोजराज
(५) प्रतापरूद्र यशोभूषण	विद्यानाथ
(६) साहित्य-दर्पण	आचार्य विश्वनाथ
(७) काव्यानुशासन	हेमचन्द्राचार्य
(८) व्यक्ति विवेक	महिम भट्ट
(९) रसगगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ

इसी प्रकार कलाके क्षेत्र मे इस ग्रन्थ ने अपनी ज्योति फैलाई और विद्वान लोग इसकी विषय वस्तु का आधार लेकर सैकडो सालो तक एक से एक उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखते रहे। जानकारी के लिए कुछ नाम यहाँ दिए जा रहे हैं -

१- अभिनयदर्पण	आचार्य नन्दिकेश्वर
२- तालाध्याय	-आचार्य दामोदर
३- नर्तन-निर्णय	-आचार्य पुण्डरीक विट्ठल
४- नाट्य-लक्षण	-आचार्य श्रृगभूपाल
५- नृत्याध्याय	-अशोक मल्ल
६- सगीत-दर्पण	-दामोदर
७- सगीत-पारिजात	-अहोबल
८- सगीतमकरन्द	-नारद
९- सगीतरघुनन्दन	-विश्वनाथ सिंह
१०- सगीत -रत्नाकर	- शारग देव
११- राग-विबोध	-आचार्य सोम
१२- रागमाला	-आचार्य जीवराज दीक्षित
१३- रागमाला	-आचार्य मेकर्षणाचार्य
१४- रागमाला	-आचार्य पुण्डरीक विट्ठल
१५- राग-तत्वविबोध	-आचार्य श्रीनिवास
१६- रस-कौमुदी	-आचार्य श्रीकण्ठ
१७- सगीत सुधाकर	-आचार्य सिंह भूपाल
१८- सगीतराज	-आचार्य कुम्भकर्णराज
१९- सगीतशास्त्रम	-आचार्य विमल
२०- नाटयदर्पण	-आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र
२१- दशरूपक	-आचार्य धनजय
२२- नाट्यचन्द्रिका	-रूप गोस्वामी
२३- भाव प्रकाश	-आचार्य शारदातनय
२४- नाटय प्रदीप	-आचार्य सुन्दर मिश्र
२५- नाट्यलक्षण-रत्नकोश	-आचार्य सागरनन्दी

सैकडो वर्षों की परम्परा मे लिखे गये ये ग्रन्थ सारे देश मे लोकप्रिय रहे हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रो के तत्कालीन आचार्यों ने इनका स्वागत किया। यही कारण है कि नेपाल से लेकर कन्याकुमारी तक और असम से लेकर सौराष्ट्र तक इन ग्रन्थो की पाण्डुलिपिया फैली पडी हैं। 'नाटयशास्त्र' की तो बात ही क्या उसके उपजीव्य जैसे '**अभिनय दर्पण**' **दशरूपक**' तथा **भाव-प्रकाश**' जैसे ग्रन्थो की कितनी ही प्रतिया उत्तर से दक्षिण तक फैली पडी हैं।

भरतशास्त्र' की विषय-वस्तु न केवल नाटयविषयक अपितु काव्यविषयक ग्रन्थो के लिए भी अपरिहार्य बन गई। काव्यशास्त्रीय परम्परा के आचार्यों ने अपने काव्यविषयक ग्रन्थो मे भी इसकी विषय-वस्तु का भरपूर प्रयोग किया है।

लेखन शैली -

'नाटयशास्त्र' के सैंतीस अध्यायो की लेखन-शैली मे स्थान-स्थान पर बहुत से अन्तर दिखाई देते हैं। शैली में गद्य तथा पद्य दोनो प्रमुख शैलियो का प्रयोग किया गया है। इसके बाद इन दोनो शैलियो के अनेक रूप होत जाते हैं। गद्य के अन्तर्गत कहीं सूत्र शैली का प्रयोग किया गया है कही कारिकाये और कही विषय प्रतिपादन हेतु निरुक्त शैली का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार पद्य मे भी प्रारम्भ के पाँच तथा अन्तिम दो अध्यायो में मूलत अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके बाद आगे अध्यायो मे छन्दो के रूप बदलने लगते हैं। कुछ स्थलो पर चार उपजातियो के छन्दो का प्रयोग किया गया है। पन्द्रहवे अध्याय मे छन्दो के विविध रूप उदाहरण सहित दिए गये हैं।इसके बाद बत्तीसवें अध्याय मे पुन ११० प्रकार के छन्दो का रचना-विधान उदाहरण सहित दिया गया है। पद्य-शैली के अन्तर्गत अनेक छन्द वश-परम्परा के उद्धृत किए गये हैं। जहाँ वशपरम्परा से प्राप्त छन्दो का प्रयोग किया गया है वहाँ छन्दो के विविध रूप दिखाई देते हैं।

अनेक स्थलो पर विषय का प्रतिपादन करने हुए शास्त्रकार जब वशपरम्परा से प्राप्त गद्य अथवा पद्य उद्धृत करता है तब उसकी भाषा शैली

मे अन्तर दिखाई देता है।मजे की बात यह है कि कुछ विषय ही ऐसे हैं जिनमे वशपरम्परा से प्राप्त उद्धरण दिए गये हैं। लगता है वे विषय बहुत प्राचीन काल मे ही ग्रन्थो का रूप धारण कर चुके थे।श्रुतपरम्परा से वे उद्धरण पीढी दर पीढी भरतो को याद कराये जाते रहे और जब 'नाटयशास्त्र' को लिपिबद्ध किया गया तब विषय की प्रासंगिकता के अनुसार उन उद्धरणो को ग्रन्थ मे जोड दिया गया।

रचना क्रम -

शास्त्र की पूरी विषय-वस्तु का बारीकी से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि नाटयशास्त्र' की रचना किसी एक युग में नही हुई है साथ ही यह भी सत्य है कि इसे किसी एक व्यक्ति ने नहीं लिखा है।

धीरे-धीरे प्रयोग होते रहे निष्कर्ष निकलते रहे और परम्परागत रूप से उन्हें अध्ययन हेतु जोडा जाता रहा।

लगता है इस ग्रन्थ की रचना तीन चरणों में हुई है। प्रथम चरण मे इसका गद्य भाग लिखा गया है। कही-कहीं गद्य इतने लम्बे हैं कि उनका काव्य मे परिवर्तन करना शायद किसी भी व्यक्ति को किसी भी काल में सम्भव नही हो सका। अत गद्य के वे लम्बे-लम्बे टुकडे प्रारम्भ से अब तक वैसे ही रहे हैं। दूसरे चरण मे 'नाटयशास्त्र' का नाटय-सम्बन्धी गद्य और पद्य मिश्रित आलेख और तीसरे चरण में ग्रन्थ के प्रारम्भ के पाँच अध्याय और अन्त के दो अध्यायो की विषय वस्तु लिखी गई। इसके सयोजन मे भी प्रथम तृतीय और पाँचवा अध्याय शायद शास्त्र को पूज्य एवं महत्वपूर्ण सिद्ध करने के ध्येय से लिखे गये प्रतीत होते हैं। प्रारम्भ के प्रथम तृतीय पाचवाँ तथा अन्तिम दो अध्यायो मे शास्त्र को अध्यात्म तथा दर्शन से जोडा गया है। इन अध्यायो की भाषा-शैली तथा विषय-वस्तु का ढग पूरी तरह पुराण-कथाओ की भाँति है। इनमें बार-बार कथा-शैली मे नाटयशास्त्र' के महात्म्य की घोषणा की गई है।

रचना-काल -

नाटयशास्त्र के रचना-काल पर जो भी विचार हुआ है उसे गम्भीर मनन का नतीजा नही कहा जा सकता। अग्रेजो ने जिस विचारधारा

को जन्म दिया उसके पीछे उनकी चाल थी। वे दुनिया की सभ्यता को ईसा के जन्म के आस-पास जोडना चाहते थे। भारतीय प्राचीन ग्रन्थो के सम्बन्ध में तो उनका दृष्टिकोण और भी सकीर्ण था। वे नही चाहते थे कि भारतवासियो को गुलाम बनाकर गुलामो की सभ्यता को अपनी सभ्यता से अच्छा सिद्ध होने दे इसलिए **लार्ड मैकाले** ने अपने शिष्य **मैक्समुलर** से भारत के सरकृत ग्रन्थो का समय बहुत बाद का घोषित कराया और मजे की बात यह है कि अन्य विद्वानो ने मैक्समुलर की बात को प्रामाणिक मान लिया।

इसी कारण 'नाट्यशास्त्र' का रचना-काल अधिकाश विद्वानो द्वारा ईसा के जन्म से २ सौ वर्ष पहले से १०० वर्ष बाद तक माना गया। लगता है रचना-काल का यह निर्धारण 'नाटयशास्त्र' को नही उसकी पाण्डुलिपियो को देखकर किया गया है जबकि पाण्डुलिपियो के अनेक रूप हैं वे अलग-अलग समय मे लिखी गई हैं।

'नाटयशास्त्र' का रचना-काल समझने के लिए उसमे छिपे रहस्यो को समझना आवश्यक है। नाटयशास्त्र' उस काल की रचना है जब तक श्रीराम तथा श्रीकृष्ण का जन्म नही हुआ था। नाटयशास्त्र' मे जहाँ अन्य ४५ देवताओ के नाम हैं वही राम कृष्ण गणेश दुर्गा आदि का नाम नही है। नाटयशास्त्र' के ४५ देवताओ मे बहुत से देवता प्राक-वैदिक काल के हैं जिनकी परम्परागत पूजा समाज मे चलती रही। नाटयशास्त्र' उस काल की रचना है जब तक सगीत शब्द का जन्म नही हुआ था। उसमे सगीत शब्द कही भी देखने को नही मिलता। 'नाटयशास्त्र' उस काल की रचना है जब समाज मे व्यभिचारी शब्द का अर्थ दुराचारी के रूप मे प्रचलित नही हुआ था अन्यथा भरत उस शब्द का प्रयोग भावो के लिए कदाचित् नही करते। कृष्ण-कथा का महान ग्रन्थ '**महाभारत**' का रचना काल यदि विदेशी विद्वानो ने ईसा पूर्व १५०० वर्ष माना है तब नाटयशास्त्र' उससे बहुत पहले का है। क्योकि **महाभारत**' और **रामायण**' मे नाटयशास्त्र की शब्दावली बहुत मात्रा मे दिखाई देती है। इसी के विपरीत नाटयशास्त्र' मे राम तथा कृष्णकालीन किसी भी पात्र के नाम देखने को नही मिलते।

'नाट्यशास्त्र' का रचना-काल **मोहन जोदड़ो** और **हड़प्पा** के काल से पहले का है।इन स्थानो की खुदाई से **नर्तकी** की मूर्ति निकली है मिट्टी के ठप्पो पर **वीणा** के चित्र मिले हैं। स्पष्ट है कि गायन वादन नर्तन की परम्परा इस सभ्यता से बहुत पूर्व ही समुन्नत हो चुकी थी। जैसा सभी जानते हैं कि प्राचीन भारत मे किसी भी शास्त्र की शिक्षा कण्ठ-परम्परा से चलती थी। अत लिखित ग्रन्थो का होना आवश्यक नही है।

'नाट्यशास्त्र' मे व्यवहृत विषयो से आर्यों का विशेष सम्बन्ध नही था। नाचने गानेवालो की परम्परा आर्यों के आगमन से बहुत पूर्व भारत मे विकसित हो चुकी थी। इसे जन्म देने वाले यक्ष नाग पल्हव शबर आदि थे। इनमे से यक्षो के अलावा शेष सभी वैदिक पूर्व जातियो को आर्यों ने दस्यु' कहकर इन्हे अपना शत्रु माना। नाचने-गानेवालो को आर्य लोग शुरू से ही शूद्र कहते रहे। तभी तो ऋग्वेद मे '**नृत्तायसूत गीताय शैलूषम्**' कहा गया। **सूत** और **शैलूष** पेशेवर नर्तक और गायक थे। इसलिए इन्हे सूत और शैलूष कहकर शूद्र वर्ग मे रखा गया। यदि ये लोग गायन वादन नर्तन की परम्परा आर्यों के आगमन से पूर्व विकसित न कर चुके होते तो आर्यों के समय नृत्यो के समारोह कैसे हो पाते? **रज्जु-नृत्य वसंत नृत्य**आदि नृत्य की अनेक परम्पराये समाज मे कैसे प्रचलित होती? इन परम्पराओं की चर्चा वैदिक साहित्य मे देखने को मिलती हैं। साथ ही इनकी भर्त्सना भी की गई है।

पाण्डुलिपि की प्रामाणिकता -

आज की बात तो जाने दीजिए आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले भी नाट्यशास्त्र' की प्रतियाँ एक जैसी नही थी उनमे पाठ भेद था। नाटयशास्त्र' की **अभिनव भारती**' नामक टीका लिखने वाले आचार्य अभिनव गुप्त ने जिस प्रति से टीका की उसमे और महाराज भोज ने '**श्रृगार प्रकाश**' मे जिस 'नाट्यशास्त्र' की प्रति से उद्धरण दिये उनमे बहुत अन्तर है। एक आलेखक जो अभिनव गुप्त ने उद्धृत किया वही आलेख भोज ने उद्धृत किया दोनो मे बहुत पाठ भेद है।

आज यह समस्या और भी जटिल हो गई है क्योकि आज देश अथवा

विदेश मे 'नाटयशास्त्र' की जो भी पाण्डुलिपिया प्राप्त हैं उनमे ५०० **वर्ष से अधिक पुरानी** कोई पाण्डुलिपि नही हैं। इससे पूर्व की सारी पाण्डुलिपिया जाने कब और कैसे विनष्ट हो चुकी हैं।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही लोगो की दृष्टि मे यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण निधि के रूप मे अपना स्थान बना चुका था और लोग इसे सग्रहणीय शास्त्र समझते थे। यही कारण है कि इसकी प्रतिया उत्तर भारत दक्षिण भारत मध्य देश पूर्वी तथा पशिचमी क्षेत्रो मे चतुर्दिक फैल गई थी। स्थान-स्थान के आचार्य अपने ग्रन्थो मे इसके उद्धरण देकर अपने ग्रन्थो की महत्ता बढाते थे।

इसके बारे मे रोचक बात यह है कि यह ग्रन्थ लम्बे समय तक उपेक्षित पडा रहा। इसका उदघाटन सर्वप्रथम सन् १८२६ मे **सर एच० एस० विल्सन** नामक एक विदेशी विद्वान ने किया। उन्हे इस ग्रन्थ की चर्चा अनेक सन्दर्भों मे पढने को मिली। उन्होने लिखा कि इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिसकी स्थान-स्थान पर चर्चा हुई है दुर्भाग्य से आज लुप्त हो चुका है। तब अन्य विद्वानो का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। सन् १८६५ ई० मे **श्री एफ० ई० हाल** नामक अमरीकन विद्वान को इस ग्रन्थ के १७ से २०वे अध्याय मिले पश्चात् सन् १८७५ ईसवी मे जर्मन विद्वान **हेमान** ने इस पर एक निबन्ध लिखा। सन् १८८० मे फ्रैंच विद्वान **पी० रैग्नो** ने इसके दो अध्यायो पर आलोचनात्मक लेख प्रकाशित किए। सन १८८८ ई० मे रैग्नो के शिष्य **ग्रोसेट** ने 'नाट्यशास्त्र' के प्रथम से चौदहवे अध्याय तक अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। विदेश के विद्वानो द्वारा जब इस ग्रन्थ पर परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया तब भारत के लोगो का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। **बम्बई के निर्णय सागर प्रेस** ने इस दिशा मे प्रयास शुरू किए और सन् १८९४ मे सम्पूर्ण 'नाट्यशास्त्र' का संस्कृत पाठ प्रकाशित किया। इसके सम्पादक **पण्डित शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरग परब** थे। सन् १९१४ में इसी प्रेस ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया इसके सम्पादक **पण्डित केदारनाथ थे**,किन्तु जो पाण्डुलिपि प्रेस को प्राप्त हुई, वह ध्वस्तावस्था में थी उसमें कहीं-कही श्लोक नही थे। अत ऐसे स्थानों पर जगह खाली छोड दी गई।

सन १९२९ मे **चौखम्बा सस्कृत सीरीज**, बनारसवालो ने इसका एक अन्य सस्करण प्रकाशित किया। 'नाटयशास्त्र' के इस सस्करण मे **३६ अध्याय थे**। इसे **बटुकनाथ शर्मा तथा बल्देव उपाध्याय** ने सम्पादित किया था। बम्बई से प्रकाशित नाटयशास्त्र मे **३७ अध्याय थे** बनारस वाले मे ३६ अध्याय थे। दोनो मे पाठ भेद भी बहुत था।

नाटयशास्त्र' के इन दो प्रकाशनो से देश मे चेतना आयी और इसके शुद्ध और प्रामाणित पाठ की आवश्यकता महसूस होने लगी। इस दिशा मे बडौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड का योगदान कभी नही भूला जा सकता। महाराज स्वय कला और साहित्य के मर्मज्ञ थे। उन्होने दक्षिण भारत के सुधी विद्वान **श्री एम०** रामकृष्ण कवि को इसका प्रामाणिक पाठ बनाने का काम सौपा। श्री कवि ने सर्वप्रथम सारे देश मे फैली 'नाटयशास्त्र' की प्रतियो की नकले एकत्र की और उसके बाद उनके पाठ-भेद का सूक्ष्म अध्ययन प्रारम्भ किया। इसी बीच मलाबार और कालीकट मे **अभिनव गुप्त** द्वारा विरचित 'नाटयशास्त्र' के भाष्य **अभिनव भारती**' का पता लगा। ये सारी प्रतिया अव्यवस्थित एव अपूर्ण थी। मद्रास राजकीय प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्तकालय ने 'अभिनव भारती' की तीनो प्रतियो के आधार पर एक नयी प्रति बनवायी। श्री कवि ने उसे वहाँ से प्राप्त किया और नाटयशास्त्र' का प्रामाणित पाठ बनाने का काम **सन् १९२० के** आस-पास शुरू कर दिया।

सन **१९२६ मे गायकवाड़ औरियन्टल सीरीज के अन्तर्गत** श्री **एम० रामकृष्ण कवि द्वारा सम्पादित** नाटयशास्त्र' **का प्रथम भाग प्रकाशित** हुआ। इसमे **प्रथम से सातवे अध्याय** तक का सस्कृत पाठ था साथ मे **अभिनव भारती**' थी और नीचे अन्य प्रतियो के पाठ-भेद भी थे।

श्री कवि निरन्तर इस काम मे लगे रहे। वर्षो के परिश्रम और प्रयत्न से एक-एक भाग बनता रहा और प्रकाशित होता रहा। 'नाटयशास्त्र' का दूसरा भाग **सन् १९३४ मे प्रकाशित हुआ**। इसमे **नवम् अध्याय से अठारह अध्याय तक का पाठ** प्रकाशित हुआ। **सन् १९५४ मे इसका**

तीसरा भाग प्रकाशित हुआ। इसमे १९ वे अध्याय से २७ वे अध्याय तक का पाठ था। **सन् १९६४ मे चौथे अध्याय के ४०-५० पृष्ठ ही प्रेस मे छप सके कि श्री कवि का निधन हो गया।** तदनन्तर श्री जे० एस० **पदे शास्त्री** से चौथा भाग पूरा कराया गया और **यह १९६४ मे प्रकाशित हुआ।**

नाटयशास्त्र' का प्रामाणिक पाठ बनाने मे देश के उच्चकोटि के **विद्वान स्वर्गीय एम० रामकृष्ण कवि** ने अपने जीवन के **लगभग ४५ वर्ष लगा दिए** इतने पर भी उनके जीवन काल मे नाटयशास्त्र' के केवल ३ भाग प्रकाशित हो सके।

स्वर्गीय कवि को देश मे चालीस से अधिक प्रतियाँ मिली। इनमे सबसे अधिक पुरानी प्रति उन्हे उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र**अल्मोडा**से प्राप्त हुई। यह प्रति ५०० वर्ष पुरानी है। शेष प्रतिया इसके बादकी लिखी हुई हैं। अभिनव गुप्त का समय लगभग १२वी शताब्दी है। अत जो प्रति अभिनव गुप्त तथा भोज को प्राप्त थी उनका तो आज पता ही नही। साथ ही उन दोनो प्रतियो मे उस समय भी पाठ भेद था। ऐसी दशा मे यह सहज ही समझा जा सकता है कि जब आजकल उपलब्ध प्रति मे इतनी महत्वपूर्ण और आश्चर्यजनक सामग्री देखने को मिलती है तो प्राचीन प्रतियो मे हो सकता है कुछ और भी तथ्य रहे हों।

बगाल के प्रसिद्ध विद्वान डा० मनमोहन घोष ने नाटयशास्त्र' का अग्रेजी-अनुवाद किया जो बगाल ऐशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से सन १९५० मे प्रकाशित हुआ। इस प्रति मे बीच के ६ अध्याय नही थे। अत यह भी पूर्ववर्ती विदेशी विद्वानो की भाति अपूर्ण ही रहा। बाद मे डा० घोष का पूरा अनुवाद **मनीषा के** नाम से प्रकाशित होकर सामने आया। बडौदा से प्रकाशित 'नाटयशास्त्र' के चारो भाग ही आज प्रामाणिक पाठ के रूप मे देश मे उपलब्ध हैं।

इस अवधि मे वृन्दावन निवासी **आचार्य विश्वेश्वर जी ने अभिनव भारती' के प्रथम से सप्तम अध्याय की हिन्दी व्याख्या की** जो डा० नगेन्द्र के सम्पादन मे सन् १९६० ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी

विभाग से प्रकाशित हुई। सन् १९६४ मे नाटयशास्त्र के १ से ७ अध्याय तक का डा0 रघुवश का हिन्दी अनुवाद मै0 मोतीलाल बनारसीदास के यहाँ से प्रकाशित हुआ। सन् १९७१ मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से पण्डित मधुसूदन शास्त्री का १ से ७ अध्याय का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ। नाट्यशास्त्र के पूरे हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन की पाठको को प्रतीक्षा बनी रही।

इधर मध्य प्रदेश के विद्वान श्री बाबूलाल शुक्ल ने हिन्दी अनुवाद का काम शुरू किया। चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी से उनके हिन्दी अनुवाद का प्रथम भाग सन् १९७२ मे प्रकाशित हो गया। पश्चात् सन १९७८ मे दूसरा तथा ८३ मे तीसरा भाग प्रकाशित होकर सामने आया। सन १९८५ मे चौथा भाग भी प्रकाशित हो गया। श्री बाबूलाल शुक्ल बधाई के पात्र हैं। यद्यपि उन्होने ३६ अध्यायो वाली पाण्डुलिपि का अनुवाद किया है जो हमारी दृष्टि से अपूर्ण ही नही दोष पूर्ण भी है।

भारतीय सस्कृति का आदर्श ग्रन्थ

वेद भारत के प्राचीनतम् एव महत्वपूर्ण ग्रथ होते हुए भी भारत मे भावात्मक एकता स्थापित करने का काम नही कर सके। वेद द्विजातीय थे। अत उन्होने सवर्णो और अवर्णो के बीच एक दीवार खीच दी। दूसरे वे धर्म-ग्रन्थ थे। अत केवल धार्मिक जनता के आराध्य थे जो धर्म की मर्यादा को सर्वोपरि मानते थे। देश के अनार्यों ने वैदिक यज्ञ-विधान को कभी स्वीकार नही किया।

महर्षि पाणिनि ने सस्कृत-व्याकरण की रचना की। वह देश मे इतनी लोकप्रिय हुई कि उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक उनकी व्याकरण को स्वीकार किया गया।इसका कोई भी विकल्प विद्वान लोग तब से आज तक नही खोज सके। इस दृष्टि से वेदो की तुलना मे पाणिनि द्वारा रचित सस्कृत व्याकरण का प्रभावदेश को एक सूत्र मे बाँधने की दिशा मे अधिक सार्थक सिद्ध हुआ। किन्तु व्याकरण का सम्बन्ध भी देश के शिक्षित-वर्ग से था। लोक के सामान्य प्राणियो को न सस्कृत से मतलब था और न उसकी व्याकरण के नियमो से।

इस दृष्टि से नाटयशास्त्र का महत्व सर्वोपरि है। उसने वर्ण और वर्ग की दीवारो को तोडकर शिक्षित और अशिक्षितो का फासला मिटाकर,एक ऐसी लोक रजनकारी कला को जन्म दिया जिसका सम्बन्ध राजा से लेकर प्रजा तक था आचार्य से लेकर शिष्य तक था,अभिजात वर्ग से लेकर अशिक्षित वर्ग तक था। वैदिक परम्परा ने कालान्तर मे शैव शाक्त बौद्ध तथा जैन धर्म को मानने वालो के बीच एक दीवार खडी करके अपने को एक वर्ग विशेष तक सीमित कर दिया। इसी प्रकार अन्य धर्मो तथा मतो के मानने वालो मे भी एक दूसरे के प्रति कभी सहिष्णुता तथा स्नेह उत्पन्न नही हो सका। वही नाटयशास्त्र ने शैव शाक्त बौद्ध जैन तथा अन्य मतो को मानने वालो को एक सूत्र मे बॉध दिया। गायन, वादन नर्तन के प्रदर्शन के समय सारे मतावलम्बी एक साथ बैठकर इनका आनन्द लेते थे और आज भी लेते हैं।

भरतो ने भारतीय सस्कृति के रचनात्मक पक्ष को सुदृढ करने मे असाधारण और अद्वितीय योगदान दिया है। वर्ण व्यवस्था के कठोर काल मे भरतो ने शूद्रो के अधिकारो के लिए '**पचमवेद**' की सृष्टि की। भरतो की महानता इसमे थी कि उन्होने सवर्णों की न निन्दा की और न उनके प्रतिकूल कोई आचरण किया। भरतो ने सवर्णों के विरुद्ध एक ललित आन्दोलन छेडा। एक नये आधार को ग्रहण कर लोक की चित्तवृत्ति को कलात्मक सौन्दर्य की ओर आकर्षित किया। उनकी कला सम्पदा के लालित्यपूर्ण वैभव ने जन-मन के हृदय पर सहज ही अधिकार कर लिया और समाज का प्रत्येक छोटा बड़ा वर्ग उनकी कला का प्रेमी हो गया। बिना भेद-भाव के समाज के हर वर्ग का प्राणी उनका प्रशंसक बन गया। उस युग की परिस्थितियों मे यह कोई छोटा काम नहीं था। भरतों का यह प्रयास इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।

भरतो का दूसरा महत्वपूर्ण और शाश्वत योगदान गायन वादन, नर्तन तथा अभिनय आदि की सुदृढ़ नीव रखना था। गायन के क्षेत्र मे षडज ऋषभ, गान्धार मध्यम पंचम धैवत और निषाद नामक सात स्वर उनकी देन है। ताल के तिस्र और चतुरस्र रूप तथा विलम्बित मध्य और द्रुत लय उनके द्वारा प्रतिष्ठापित की गई। तन्त्री वाद्य, सुषिरवाद्य

घनवाद्य तथा अवनद्ध वाद्यो की परम्परा भरतो ने डाली। वादी विवादी सवादी और अनुवादी स्वर उन्होने बताये। ये सारे तत्व आज भी देश म प्रचलित शास्त्रीय सुगम और लोक सगीत मे प्रयुक्त हो रहे है। इतना ही नही सगीत चाहे उत्तरभारती हो या कर्नाटक का आज भी उनमे सात स्वर ताल लय आदि का प्रयोग समवेत रूप से हो रहा है। सात के बाद आज तक कोई आठवे स्वर का आविष्कार नही कर पाया है। काश्मीर के सगीत और कर्नाटक के सगीत की शैलियो मे भेद हो सकता है किन्तु भरतो द्वारा चलाये गये स्वर और ताल के स्वरूप मे कोई भेद नही है।

इसी प्रकार वादन के क्षेत्र मे चाहे मणिपुरी सगीत हो या मालवा का राजस्थान का हो या महाराष्ट्र का असम का हो या गुजरात का वाद्य-यन्त्रो के आज भी तत् सुषिर घन और अवनद्ध रूप प्रयोग मे लाये जा रहे हैं। यह बात अलग है कि किसी प्रान्त मे अवनद्ध का नाम ढोल है तो कही मृदगम कही नकारा है तो कही मादल कही चग है तो कही तबला।

भरतो द्वारा निर्दिष्ट नर्तन के क्षेत्र मे भी भरतो की देन अनुपम है। नृत्य के छ अगो और छ उपागो का सचालन देश की सभी नृत्य शैलियो मे प्रयोग मे लाया जा रहा है। चाहे कत्यक नृत्य हो या कथकलि मणिपुरी हो या उडीसी भरतनाटयम् हो या कुट्टिअट्टम्। सभी नृत्यो मे पाद-सचालन कटि-सचालन हस्तक तथा कलात्मक मुद्राये भरत के नाटयशास्त्र के आधार पर ही बनाई जा रही है। नृत्य भाव नृत्य या लोकनृत्य सबका नर्तन-विधान भरतो के सिद्धान्तो पर आधारित है।

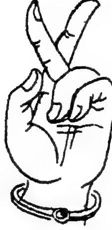
यही स्थिति अभिनय की है। देश के किसी भी प्रान्त मे किसी भी क्षेत्रीय भाषा मे जहाँ अभिनय होता है भरतो द्वारा बताई गई भावाभिव्यक्ति का प्रयोग किया जाता है। देश मे फैले शास्त्रीय और लोकनाटयो गायन वादन और नर्तन मे भरतो द्वारा स्थापित किए हुए तत्त्व आज भी प्रयोग मे लाये जा रहे हैं। प्रत्येक शैली मे आगिक है वाचिक है आहार्य है और सात्विक है।

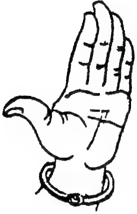
सर्वविदित है कि भगीरथ कठोर तपस्या करके पतित पावनी गगा को पृथ्वी पर लाये थे। भगीरथ से पूर्व उनके पूर्वज अशुमान तथा सगर भी

असंयुत हस्त


पताक


त्रिपताक


कर्तरीमुख


अर्धचन्द्र


अराल


शुकतुण्ड


मुष्टि


शिखर


कपित्थ


खटकामुख


सूची


पद्मकोश

प्रयत्न करते रहे थे। इसी प्रकार भरत लोगों ने कठोर तप करके गायन वादन नर्तन की त्रिवेणी को सार्वजनिक कल्याण के लिए लोक में प्रवाहित किया। कला की इस सुधामय सरिता ने लोक हृदय को आल्हाद और आनन्द के रस से आप्लावित कर दिया। धर्म जाति, वर्ण, प्रान्त के भेदों को भूलकर सारा लोक भरतों की इस भागीरथी में आनन्द के गोते लगाने लगा गायन वादन, नर्तक के महोत्सव मनाने लगा। भरतों ने सारे देश को सच्चे अर्थों में भावात्मक स्तर पर जोड़ा;क्योंकि भरतों की कला के स्रोत भाव और रसों से ही फूटे थे।

भरतों का यह उपकार इस देश की संस्कृति पर एक ऋृण है जिसे आज सांस्कृतिक क्षेत्र के लोगों को चुकाना है। भरतों का यह प्रयास आज के आदमी के लिए एक आदर्श प्रेरणा है, जिसके द्वारा देश को भावात्मक सूत्र के द्वारा पुन जोड़ा जा सकता है।

धर्म और भाषाओं ने मनुष्य को संकीर्णता के घेरे में बांध कर उसे छोटा किया है।कला ने विभिन्न धर्मों के माननेवालों को एक मंच पर एकत्रित किया है। कला के क्षेत्र में अमजद खां, इलियाज खां हिन्दुओं के समारोहों में मुस्कराते हुए जाते हैं और पण्डित जसराज रामचतुर मलिक पण्डित भीमसेन जोशी मुसलमानों के उर्स में सजदा पेश करने जाते हैं। भावात्मक एकता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है? यह देन भरतों की है। उन्होंने वीणा के तारों में सात स्वर दो ग्राम १४ मूर्च्छनाये और २२ श्रुतियों का नियोजन किया था भरतों ने स्वर तान अलाप और वर्णों की योजना प्रारम्भ की थी।

भरतों ने सबसे पहले अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में रस और भाव नामक शब्दों को प्रकाशित किया। यदि भरत इन शब्दों को न लिखते तो शायद आज दुनियाँ में लोग रस और भाव नामक शब्दों को जान भी पाते या नहीं, कहा नहीं जा सकता। भरतों ने रस और भाव के स्वरूप का ज्ञान कराया उनकी व्याख्या की उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म अग का आश्चर्यजनक विवेचन किया और रस और भाव के इतने सुदृढ़ सिद्धान्त बनाए कि आज हजारों वर्ष के बाद भी वे अमर हैं।

एक समय था जब रस और भाव की सत्ता समस्त भारतीय कलाओ पर अपना एकछत्र शासन करती थी। कला का कोई भी क्षेत्र हो उस क्षेत्र मे प्रवेश करने से पूर्व प्रशिक्षार्थी को नाटयशास्त्र के रस और भाव वाले अध्यायो की विधिवत् शिक्षा लेनी पडती थी। **विष्णु धर्मोत्तर पुराण** मे लिखा है कि **मूर्ति कला** की शिक्षा बिना रस-भाव को समझे अपूर्ण ही रह जाती है। रस-भाव के अध्ययन से ही मूर्तिकार अपनी प्रतिभा मे अग और उपागो का सौन्दर्य ढाल सकता है प्रतिभा की भृकुटियाँ दृष्टि अधर चिबुक नासिका आदि का कलात्मक भावपूर्ण अकन तभी किया जा सकता है जब मूर्तिकार रस-भाव को ठीक से समझ चुका हो। मूर्ति की मुद्रा में कलात्मकता लाने के लिए उसे नाट्यशास्त्र मे वर्णित **अगहारों** तथा **कारणो** की मुद्रओं का सहयोग लेना ही पड़ेगा। यही कारण है कि भारत की प्राचीन मूर्ति-कला में लयात्मक सौन्दर्य और भावाभिव्यक्ति की पूर्णता दिखाई देती है। **यक्ष-यक्षिणी** की मूर्तियाँ हों या **शालभंजिकाएँ** सभी की मुद्राएँ चिन्ताकर्षक एव कलात्मक दिखाई देती हैं। इसका कारण भरतो का नाटयशास्त्र है, जिसने इस कला के साधको के हृदय पर अपना गहरा प्रभाव डालकर उन्हे नृत्तात्मक मुद्राएँ बनाने की प्रेरणा प्रदान की।

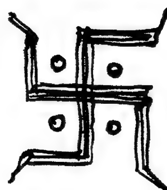
कला की लालित्य पूर्ण अभिव्यक्ति की परम्परा भारतीय चित्र-कला मे भी उतर कर आयी।भारतीय चित्र-कला ने तो न केवल नाट्यशास्त्र मे वर्णित करणो और अगहारो से प्रेरणा ली अपितु शास्त्र मे वर्णित अन्य विषयो को भी पकड़ा जैसे मध्यकालीन चित्र-कला में चित्रकारो ने **अष्ट नायिकाओ**, यथा-अभिसारिका वासक– सज्जा, विरहोत्कठिता विप्रलब्धा प्रोषित भर्तृका, स्वाधीन भर्तृका, खण्डिता तथा कलहान्तरिता के सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाये। कालान्तर में इन नायिकाओ के रूप मे विकास हुआ राजपूताना-शैली की चित्र-कला देखें अथवा कॉंगडा शैली की किशनगढ़ शैली को देखे अथवा पहाड़ी-शैली की या मुगल-शैली की, सभी मे नायक-नायिकाओ के मनोरम चित्रण किये गये हैं। इनकी पृष्ठ-भूमि मे सौन्दर्य की किरणें फैलाने वाला ग्रंथ भरतों का नाट्यशास्त्र ही है।

भारतीय काव्य-शास्त्र की तो नाट्यशास्त्र जैसे जड है। यदि नाटयशास्त्र न लिखा गया होता तो सैंकड़ों शताब्दियो तक लिखे जाने वाले

काव्य शास्त्रीय गन्थ शायद लिखे ही न जाते। काव्य की परिभाषा काव्य के अलकार काव्य के गुण-दोष, काव्य के लक्षण, छन्द-शास्त्र तथा अनेक काव्यो का मूल यही ग्रन्थ रहा है।

भारत की धातु-कला पर भी नाट्यशास्त्र का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। धातु निर्मित प्राचीन मूर्तियों मे चाहे **नटराज शंकर** की मूर्ति हो अथवा नृत्य करते गणेश की। रमणियों की मूर्ति हो या किसी अन्य की। उनमें कलात्मक सौन्दर्य की छटा दिखाई देती है। **मोहन जोदड़ो** की खुदाई से प्राप्त **नर्तकी** की मूर्ति इस कथन का सशक्त प्रमाण है। और तो और आज तक धातु की बनी वस्तुओ पर खुदाई से जो कलात्मक भावपूर्ण आकृतियाँ बनाई जाती हैं उन पर प्राचीन मूर्ति-कला का प्रभाव है और प्राचीन मूर्ति-कला नाटयशास्त्र से प्रभावित है। मूर्तियों का लयात्मक विन्यास तथा कलात्मक साज-सज्जा हमे उसी परम्परा से जोडती है।

इस दृष्टि से भरतो के नाट्यशास्त्र ने सारे देश को काव्य, गायन वादन नर्तन शिल्प के माध्यम से भावात्मक एकता के सूत्र मे जोडा है। भरतो की कला-सृष्टि इतनी सशक्त सौन्दर्यशाली और कमनीय थी कि देश के प्रत्येक क्षेत्र के साधको के लिए वह अपरिहार्य बन गई। लोगो को लगा कि जैसे उसके प्रयोग के बिना उनकी कला अपग और अपूर्ण रह जायेगी। अत सारे देश ने एक सिरे से दूसरे सिरे तक उसे बिना भेद-भाव के ग्रहण किया और देश में एकरूपता का जयघोष किया।



अध्याय तीन

नाटक प्रदर्शन या प्रयोग?

भरत का प्रयोग धीरे-धीरे दर्शन अध्यात्म और धर्म की सरिताओ में स्नान करता हुआ ऊँचाई के उस शिखर पर पहुँच गया जहाँ इसका लक्ष्य दर्शको का मात्र मनोरजन करना ही नहीं था अपितु दर्शको की चित्तवृत्ति को सुसंस्कारित करने का एक महान नेत्र-यज्ञ बन गया सभ्य और आदर्श लोकवादी समाज-रचना का एक प्रकल्प सिद्ध हुआ संवेदनशील और निष्कलक मानव की रचना का एक कलात्मक अनुष्ठान बना। उसका प्रयोग केवल दिखाने के लिए नही केवल मनोरजन के लिए नही अपितु समाज के परिष्कार एवं विकास के लिए प्रेरणा का पीयूष बहाने के लिए है।



यथा जीवत्स्वभावं हि परित्यज्यान्यदेहिकम् ।
परभावं प्रकुरुते परभावं समाश्रित ।।

२६-७

एवं बुध परभाव सोऽस्मीति मनसा स्मरन् ।
येषां वागंगलीलाभिश्चेष्टाभिस्तु समाचरेत् ।।

२६-८

जिस प्रकार जीव एक शरीर त्याग कर अन्य देह मे प्रवेश कर दूसरे जीव के स्वभावानुसार आचरण करने लग जाता है उसी प्रकार पात्र को चाहिए कि वह जिसकी भूमिका कर रहा है उसका मन से स्मरण करें और उसके बाद अपनी वाणी तथा आगिक क्रियाओ को उसके अनुरूप बनाले।

आज प्राय नाटय के प्रदर्शन को नाटक कहा जाता है। नाटय या नाटक शब्द मचन के लिए रूढ हो गये हैं। कही भी कोई नाट्य प्रस्तुति हो यही कहा जाता है कि अमुक स्थान पर नाटक या नाटय का मचन किया जा रहा है।

भरत अपने 'नाटयशास्त्र' मे नाटक को **प्रयोग**' कहता है। नाट्यशास्त्र मे '**नाट्य**' अभिनय का एक अग मात्र है। इसी प्रकार मचन करने की एक शैली विशेष का नाम भी **नाटक**' है। नाटयशास्त्र मे **नाट्य** तथा **नाटक** दोनो ही शब्द आज के अर्थ से पूर्णत भिन्न है।

भरत की कल्पना का नाटक सिर्फ प्रदर्शन तक सीमित नही था। प्रदर्शन तो किसी भी छोटी से छोटी बडी से बडी या जिंदा और मुर्दा चीजो का हो सकता है। प्रदर्शन के समय देखनेवाले के अन्दर एक जिज्ञासा की भावना होती है अगर प्रदर्शन की चीजे उसे अच्छी लगे तो उसे अच्छा लगता है। अगर प्रदर्शन की चीजे उसे पसन्द नही आती तो वह अपनी प्रतिक्रिया प्रकट नही करता चुप रह जाता है।

नाटय को भरत प्रदर्शन से बहुत आगे की चीज मानता है। भरत का उद्देश्य अभिनय दिखाकर दर्शको की जिज्ञासा या कौतूहल मिटाना नही है। वह जानता है कि अभिनय मे चेतन तत्त्व की प्रस्तुति चेतन तत्त्व के सामने होती है।करनेवाले और देखनेवाले दोनो ही मन बुद्धि से सजग होकर एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं। वह भी दोनो ओर के पक्ष एकाकी नही समूह के रूप मे होते हैं। जैसे खेल के मैदान मे दो दल आमने-सामने एक दूसरे के प्रति टकराने के लिए प्रतिपल तैयार रहते हैं उसी प्रकार नाटय के

मंचन के समय दो दल एक दूसरे के सामने अडे रहते हैं। दर्शक इतना सजग होता है कि पात्र की छोटी से छोटी भूल को एक पल मे पकडने को तैयार रहता है और पात्रों का समूह इस बात पर आमादा रहता है कि मै इतने बडे समूह को अपनी कला के कौशल से मजबूर कर दूँ कि ये मेरी तारीफ करें।

भरत पात्रों और दर्शको की भाव-भूमि के इन रहस्यो से सुपरिचित था। यही कारण है कि वह इसे प्रदर्शन नही कहता। भरत जानता था कि प्रदर्शन को देखने के बाद दर्शक केवल अपना मत व्यक्त करता है कि प्रदर्शन अच्छा था या बुरा? वह नाटक के दर्शक को उस सीमा तक नहीं छोडता। उसे आगे बहुत आगे ले जाता है। भरत तमाशा दिखानेवाला बाजीगर नही इन्द्रजाल द्वारा दर्शको के मन को चमत्कृत करने वाला प्रदर्शनकर्ता नही अपितु वह अपने समाज को समुन्नत करनेवाला समाज को सुशिक्षित और सुसंस्कारित करनेवाला रागमय नेता है।

भरत का प्रयास इसलिए **प्रयोग** है कि उसे सफल बनाना एक व्यक्ति के हाथ की बात नही उसकी सफलता के लिए रगकर्मियो के पूरे दल को सामूहिक रूप से प्रयास करना पडता है। साथ ही दल के विभिन्न रगकर्मियो को अनेक शिल्पो के अनेक रूपो को समन्वित करके एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सजगता से काम करना होता है।

'नाट्यशास्त्र' मे **नाट्य** तथा **नाटक** दोनो शब्दो का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों मे हुआ है। शास्त्र मे अभिनय के प्रमुख तीन तत्त्व बताये गये हैं। इन्हे **नृत्त**, **नृत्य** तथा **नाट्य** कहा गया है। भरत के अनुसार 'नाटय' अभिनय के तीन तत्वो मे से एक तत्त्व है। शास्त्रकार कहता है कि प्रदर्शन मे पात्र नृत्त के द्वारा दर्शको के मन मे आल्हाद उत्पन्न करता है नृत्य मे गीत सम्मिलित करके चित्तानुरजन करता है, किन्तु जब पात्र को रस की अभिव्यक्ति करनी होती है तब उसे 'नाटय' नामक तत्त्व का प्रयोग करना पडता है। रस की निष्पत्ति मुख्य रूप से **मुखज अभिनय** द्वारा की जाती है और **मुखज अभिनय** द्वारा की जानेवाली अभिव्यक्ति '**नाट्य**' कहलाती है। शास्त्र के अनेक प्रसगो मे भरत ने पात्र को निर्देश दिए हैं कि इस प्रकार की प्रस्तुति केवल 'नाटय' द्वारा होनी चाहिए।

नाटयशास्त्र' के १८वे अध्याय मे **प्रयोग** प्रस्तुत करने की दस शैलियो का उल्लेख किया है। इन्हे शास्त्र मे **दशरूप** कहा गया है। इन शैलियो मे **नाटक** एक शैली विशेष का नाम है। इन दस शैलियो मे **नाटक**, **डिम**, **उत्सृष्टिअक**, प्रकरण समवकार व्यायोग भाण प्रहसन ईहामृग वीथी आदि शैलियो को परिभाषित कर यह स्पष्ट किया गया है कि अमुक शैली मे इतने अक होते हैं इतने पात्र होते हैं अमुक शैली मे युद्ध के दृश्यो की प्रधानता होती है अमुक मे श्रृगार-रस के प्रसगो की प्रधानता होती है आदि-आदि।

कहा जा चुका है कि नाटयशास्त्र' मे नाटय तथा नाटक दोनो शब्द यद्यपि देखने को मिलते हैं किन्तु दोनो के अर्थ वर्तमान अर्थ से भिन्न हैं।

भरत और उनकी पूर्ववर्ती परम्परा ने कदाचित् इस रहस्य को समझ लिया होगा कि मचन पूर्णत एक प्रयोग होता है। आज जो प्रस्तुति एक स्थान पर की गई कल उसी प्रस्तुति मे गायक वादक अथवा प्रस्तोता को दूसरे दिन कही भी अपेक्षानुसार परिवर्तन करना पड सकता है। पात्र की एक मुद्रा बदलते ही गायक के स्वर मे एक कण अथवा मीड लगते ही उसका रूप बदल जाता है। सम्भव है आज एक पात्र अपना सवाद बोलते समय नायिका के नेत्रो की ओर देखकर बोले कल उसी सम्वाद को वह नायिका की मुक्तावली को इगित करके बोले ऐसा करते ही पात्र की मुद्रा और भाव-भगिमा मे परिवर्तन हो जायेगा और परिवर्तन की इस प्रक्रिया मे यह सम्भव है कि कल की अपेक्षा आज की मुद्रा तथा भाव अधिक कलात्मक एव प्रभावशाली बन पडे। यदि उसी भूमिका को कोई अन्य पात्र करता है तो उसकी भगिमा और वाणी परिवर्तित होने पर उसी सवाद मे नयी सौन्दर्य सृष्टि हो जावेगी। अत इस कला मे नित्य-नित्य नयी-नयी मुद्राओ तथा वाणी के उतार-चढाव से नया प्रयोग गतिशील बना रहता है। इसी दृष्टि से शायद नाटयशास्त्र मे इसे '**प्रयोग**' कहा गया था।

कालिदास अथवा **शूद्रक** के नाटकों को विभिन्न कालों मे विभिन्न निर्देशको ने प्रस्तुत किया होगा। काल के अन्तराल मे भूमिका करनेवाले पात्र भी बदलते रहे होगे। प्रत्येक प्रदर्शन मे एक नया रूप परिवर्तित होता

रहा होगा इन नाटकों के प्रदर्शन, **रूस**, **अमरीका**, **फ्रान्स**, **इग्लैण्ड** में उनकी भाषा में अनूदित करके किए जाते रहे हैं। प्रत्येक देश की प्रस्तुति में प्रयोग का एक नया रूप सामने आता रहा है।

नाटक की प्रत्येक प्रस्तुति चूँकि निर्देशक भूमिका करनेवाले पात्र साज-सज्जा करनेवाले मच व्यवस्था करनेवाले तकनीकी वाद्य-वादक गायक नर्तक आदि अनेक रगकर्मियो का समन्वित प्रयोग होता है और कल्पना तथा कौशल भेद से उसमे अन्तर उत्पन्न होता रहता है।अत वह सही अर्थों मे **प्रयोग** का रूप धारण कर लेता है।

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' मे कई स्थानो पर इसके लिए **प्रयोग** शब्द का उल्लेख किया है। शास्त्र के सत्ताईसवे अध्याय के श्लोक सख्या ९९ मे इकत्तीसवे अध्याय के श्लोक १३९ मे बत्तीसवे अध्याय के श्लोक सख्या ३७८ में वह प्रयोग का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहता है कि गायन वादन और विविध नाट्यांगो के सुन्दर समन्वय को '**प्रयोग** कहा जाता है।

प्रयोग के वह दो भेद बताता है। प्रथम **शुद्ध प्रयोग**' और दूसरा **चित्र प्रयोग**' अध्याय चार के श्लोक १५ मे वह कहता है कि केवल गीतो के द्वारा की जाने वाली प्रस्तुति '**शुद्ध प्रयोग**' होती है जिसमे नृत्य को भी सम्मिलित कर दिया जाता है, वह '**चित्र प्रयोग**' कहलाता है।

प्रयोग करनेवालो के लिए भरत '**नर्तक**' **प्रयोगकर्त्ता**' अथवा **प्रयोगज्ञ**' शब्द का प्रयोग करता है।अभिनेता शब्द उसकी दृष्टि मे नही है। पूरे नाटयशास्त्र मे अभिनेता शब्द देखने को नही मिलता। कारण यह है कि अभिनेता का सम्बन्ध केवल अभिनय से है। भरत की शैली मे अभिनय एक शाखा मात्र है। जिसका ज्ञान प्रयोगज्ञ को होना चाहिए। वह अपनी शिक्षा के द्वारा शिष्य को मात्र अभिनेता अर्थात् अभिनय करनेवाला नही बनाना चाहता।वह उसे गायन वादन नर्तन तथा अभिनय के चारो अगो की सर्वांगीण शिक्षा देता है। उसका शिष्य मात्र सवादो का वाचक अथवा भावाभिव्यक्ति करनेवाला पात्र नही है अपितु उसका शिष्य गायन-कला वादन-कला नृत्त तथा नृत्य का ज्ञाता अभिनय के आगिक वाचिक आहार्य और सात्विक अगो मे प्रवीण तथा समस्त नाटयागो का जानकार होता है।

भरत की कल्पना का '**प्रयोगज्ञ**' सामान्य कोटि का अभिनेता नहीं अपितु वह गायन वादन नर्तन का विशेषज्ञ है। भरत द्वारा आचार्य और शिष्य के गुणो पर प्रकाश डाला गया हे। इन गुणों के लक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी कल्पना का स्वरूप क्या है?

वह शास्त्र के अध्याय ३३ के श्लोक संख्या ११ में आचार्य के ६ गुणो का उल्लेख करता है। इन्हे उसने १ **ज्ञान**, २ **विज्ञान**, 3 **करण**, ४ **वचन**, ५ **प्रयोग सिद्वि तथा**, ६ **निष्पादन** कहा है।

१ - शास्त्र का पूर्ण परिज्ञान '**ज्ञान**' कहलाता है। २ -शास्त्र ज्ञान के आधार पर उसकी क्रियाओ का सम्पादन '**विज्ञान**' कहलाता है। ३ - कण्ठ और हाथ की क्रियाएँ '**करण**' कहलाती हैं। ४ - ग्रन्थो के अनुसार क्रिया और प्रयोगों को सिद्व करना '**वचन**' कहलाता है। ५ - देश काल के अनुसार क्रियाओं का व्यवहार '**प्रयोगसिद्धि**' कहलाता है।६ - शिष्य के अनुसार शिक्षा देना '**निष्पादन**' कहलाता है।

शिष्य के ६ गुण बताते हुए कहा गया है कि शिष्य में १ -**मेघा**, २ - **स्मृति**, ३ -**श्लाघा**, ४ - **राग**, ५ -**संघर्ष तथा** ६ - **उत्साह** होना चाहिए। अर्थात् १ - प्रखर बुद्वि २ - स्मरण करने और रखने की क्षमता ३ - अन्य व्यक्तियों के प्रति आदर का भाव, ४ -विद्या के प्रति मन में अनुराग ५ - कठोर श्रम करने की क्षमता तथा, ६ -उत्साह का भाव होना चाहिए।

भरत के इस तात्विक चिन्तन से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी दृष्टि से कोई भी छोटी से छोटी बात छूटी नहीं थी।आज हजारों वर्ष बाद भी अच्छे गुरु और शिष्य में यही गुण होने चाहिए।

प्रयोग के ११ तत्त्व -

शास्त्र में 'प्रयोग' को ग्यारह तत्त्वों का संग्रह बताया गया है। 'नाट्यशास्त्र' के छटवें अध्याय में वह नाट्यांगों के स्वरूप की चर्चा करते हुए कहता है कि प्रारम्भ में यह समझ लेना चाहिए कि मूल रूप से ११ तत्त्वों का संग्रह ही प्रयोग है।

प्रमुख ११ तत्वो की चर्चा करते हुए वह इनके नाम इस प्रकार गिनाता है -

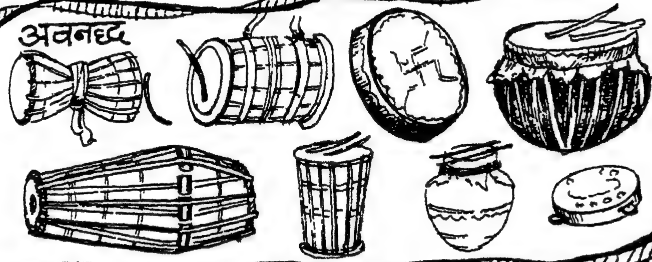
१– रस ६– प्रवृत्ति
२– भाव ७– सिद्धि
३– अभिनय ८– स्वर
४– धर्मी ९– आतोद्य
५– वृत्ति १०– गान
११– रगमण्डप

शास्त्र के प्रारम्भ मे जब ये ११ तत्त्व सामने आते हैं तो लगता है कि इन ११ तत्वो को समझने से शास्त्र की सारी बात समझ मे आ जायेगी। किन्तु जब शास्त्रकार इन ११ तत्वो के भेदोपभेद करता है तब बुद्धि चकित रह जाती है। शास्त्रकार प्रत्येक पक्ष के बारीक से बारीक अगो तक पहुँचता है और उनका तात्विक विवेचन और प्रयोग की विधियाँ स्पष्ट करता है।

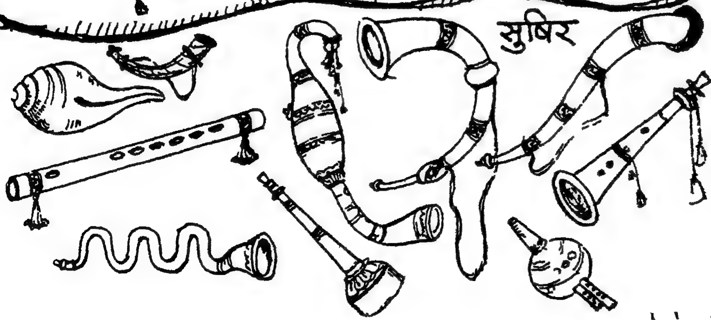
इस सन्दर्भ मे पहले यह देखे कि ये ११ तत्त्व क्या हैं? भरत इनका विवेचन करते हुए कहता है कि **रस** आठ हैं। इनके नाम **श्रृंगार**, **हास्य**, **करुण**, **रौद्र**, **वीर**, **भयानक**, **बीभत्स** तथा **अद्भुत** हैं। भावो की सख्या ४९ है इनमे आठ **स्थायी भाव**, ३३ **व्यभिचारी भाव** तथा ८ **सात्विक भाव** हैं। अभिनय के चार भेद हैं इन्हे **आँगिक**, **वाचिक**, **आहार्य** और **सात्विक** कहा गया है। धर्मियाँ दो होती हैं - एक **नाट्यधर्मी** तथा दूसरी **लोकधर्मी**। वृत्तियाँ चार हैं। इन्हे **भारती**, **सात्वती**, **कैशिकी** और **आरभटी** कहा गया है। प्रवृत्तियाँ चार हैं। इन्हें **आवन्ती**, **पाँचाली**, **दाक्षिणात्या** तथा **औद्रमागधी** कहा गया है। सिद्धियाँ दो हैं। इन्हे **दैविकी** १ और **मानुषी** कहा गया है। स्वर सात हैं। इन्हे **षडज**, **ऋषभ**, **गान्धार**, **मध्यम**, **पंचम**, **धैवत** तथा **निषाद** कहा गया है। **आतोद्य** चार प्रकार के हैं। इन्हे **तत्**, **सुषिर**, **घन** तथा **अवनद्ध** कहा गया है। गान पाँच प्रकार के हैं। इन्हे **प्रावेशिक**, **आक्षेपिक**, **प्रासादिक**, **अन्तर** तथा **निष्क्राम** कहा गया है। रगमडप तीन प्रकार के हैं। इन्हे शास्त्र मे **चतुरस्र**, **विकृष्ट** तथा **त्र्यस्र** कहा गया है। इन सबकी यदि गणना की जाए तो प्रारम्भिक ११ तत्वो

आतोद्य









के ९२ भेद तो यहाँ हो जाते हैं।

रस को शास्त्रकार बहुत महत्त्व देता है। भरत का कथन है कि रस के बिना किसी भी नाटयाँग की अनुभूति नहीं होती। प्रयोग में वह आठ रस मानता है। भरत के बाद आचार्यों ने ९ रस मानते हुए शान्त नामक रस को जोड दिया। शान्त रस की चर्चा प्रमुख रूप से अभिनव गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'अभिनव भारती' मे की और शान्त रस का स्थायी भाव **निर्वेद** या **शम** बताया।

भरत द्वारा शान्त रस वर्जित -

'नाट्यशास्त्र' के मूल पाठ में आठ रसों के बाद नवें रस के रूप में शान्त रस की भी गणना की गई है। शान्त रस पर शास्त्र मे साढ़े पाँच श्लोक हैं। इन श्लोको की व्याख्या अभिनव गुप्त ने बहुत विशद की है। अन्य रसों की व्याख्या की तुलना मे अभिनव गुप्त का मन शान्त रस की व्याख्या में अधिक रमा है और उसने कई पृष्ठो में इसकी व्याख्या की है अनेक ग्रन्थो के उदाहरण भी दिये हैं। इन श्लोको के तत्काल बाद वाले श्लोक में शास्त्र मे पुन रसो की सख्या आठ ही बताई गई है '**इत्यष्टौ रसा** '। ध्यान से देखने पर बात साफ हो जाती है कि भरत ने तो रस आठ ही माने हैं। शान्त रस से सम्बन्धित साढे पाँच श्लोक किसी ने बाद में जोडे हैं। शान्त रस वाले श्लोको मे श्लोक सख्या भी नही है। उनसे पहले और बाद वाले श्लोको मे जबकि सख्या क्रम दिया गया है। इस प्रसग पर रसवाले प्रकरण में हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

भरत ने शान्त रस इसलिए स्वीकार नही किया कि मच पर शान्त रस दिखाना सम्भव नही है। मच पर अभिनय नृत्य गान निरन्तर चलता रहता है। पल-पल मे पात्र के मुख पर भाव बदलते रहते हैं उसकी आँगिक चेष्टायें बदलती रहती हैं। शान्त मे पात्र को स्थिर होना पडता है। जैसे कोई मुनि तपस्या कर रहा है तो उसकी मुद्रा शान्त रस की प्रतीक है किन्तु प्रश्न यह है कि मच पर मुनिजी को शान्त मुद्रा मे कितनी देर तक बिठाया जा सकता है? कुछ देर बाद कहानी आगे बढेगी कोई अन्य पात्र आयेगा या मुनिजी को अपनी समाधि भग करके कोई सवाद बोलना पडेगा।

ऐसा करते ही शान्त रस भग हो जायेगा।

शान्त रस मूर्तिकला या चित्रकला में दिखाया जा सकता है, मच-प्रस्तुति की गतिशील कला में नहीं। यही कारण है कि भरत ने **निर्वेद** नामक **संचारी भाव** दिखाने की अनुमति तो दी शान्त को रस के रूप में स्वीकार नही किया। अभिनव गुप्त ने निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव कहा था।

रस-भेद -

श्रृगार रस के भरत ने पहले **संयोग-श्रृंगार** और **वियोग-श्रृंगार** नामक दो भेद किये हैं। बाद में उसके **धर्मश्रृंगार**, **अर्थश्रृंगार** और **काम श्रृंगार** नामक ३ भेदो का विवेचन और किया है। श्रृगार रस का स्थायी भाव रति कहा गया है अत किसी व्यक्ति के हृदय मे धर्म के प्रति रति जाग्रत होना धर्मश्रृगार है और धन-प्राप्ति के लिए रति जाग्रत होना अर्थश्रृगार है और प्रेमिका के प्रति रति जाग्रत होने वाला भाव काम-श्रृगार है।

हास्य रस के भरत '**आत्मस्थ**' और '**परस्थ**' नामक दो भेद करता है। जब पात्र स्वय हँसता है वह 'आत्मस्थ' हास्य है और जब पात्र अन्य को हँसाता है वह 'परस्थ' हास्य है। आगे वह हास्य के ६ भेद भी बताता है। **स्मित**, **हसित**, **विहसित**, **उपहसित**, **अतिहसित** तथा **अपहसित**। इनका प्रयोग वह उत्तम मध्यम तथा अधम कोटि के लोगो के लिए बताता है।

करुण रस के भी वह ३ भेद करता है। इन्हे **धर्म-हानि**, **अर्थ-हानि** तथा **शोक** के कारणो के साथ जोडता है। रौद्र रस के ३ भेद करता हुआ **रूपात्मक-रौद्र**, **अंगात्मक रौद्र** तथा **स्वभावात्मक रौद्र** कहता है। इसी प्रकार वीर रस के ३ भेद करता हुआ **दानवीर**, **धर्मवीर** और **युद्धवीर** कहता है। इसी प्रकार भयानक बीभत्स तथा अदभुत के भी भेद करता है। ग्यारह तत्वों में रस भी एक तत्व था। बाद मे उनकी सख्या ८ हुई और जब उनके भी भेद उपभेद किए गये तो रसो के ३० रूप हो जाते हैं।

इस एक उदाहरण के द्वारा हमने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि भरत का चिन्तन कितना गहन और दूर तक जाने वाला था। प्रयोग के ११ तत्वों का जब वह विस्तार करता है तो उसकी गहन दृष्टि और ज्ञान की अपरिमित सीमाओ का आभास होता है।

भाव -

भावो में वह सर्वप्रथम आठ रस के ८ **स्थायी भावो** की गणना करता है। पश्चात् ३३ **व्यभिचारी भाव** बताता है। इन्हे वह कई स्थानो पर **संचारी** भी कहता है। भरत ने जब 'नाटयशास्त्र' की रचना की उस समय व्यभिचारी का अर्थ दुराचारी या आचरणहीन नही था। इस शब्द की रचना 'चर' धातु से हुई थी जिसका अर्थ चलना था अर्थात् चलने वाले भाव जो मुख पर पल-पल मे आते और जाते रहते है। वह ८ सात्विक भाव बताता है। सत्व से उसका अर्थ मन से है। अत ये भाव मन से उदभूत होते हैं।

अभिनय के चार भेद करते हुए उन्हे **आंगिक**, **वाचिक**, **आहार्य** और **सात्विक** कहता है। प्रत्येक प्रयोग मे इन समस्त अगो का प्रयोग होता है। आगिक के अन्तर्गत **शरीरज**, **मुखज** तथा **चेष्टाकृत** भेद करता है। वाचिक के अन्तर्गत वह कथानक-रचना के नियम तथा वाणी से सम्बन्धित ध्वनि काकु स्वर व्यञ्जन, भाषा आदि के नियमो का निर्देश करता है।

आहार्य के अन्तर्गत वह **पुस्त**, **अलंकार**, **अंग-रचना** तथा **सज्जीव** नामक प्रमुख भेद करके बाद में उनके अनेक भेदोपभेद करता है। इसमे पात्रो के आभूषण मुकुट तथा वस्त्रों को लेता है। अंग-रचना मे मुख-सज्जा के समस्त अगो के विशद निर्देश देता है बालों के प्रयोग तथा दाढी मूँछ लगाने की विधियाँ मुखौटे बनाने की विधियाँ बताता है। सज्जीव के अन्तर्गत वह मच-प्रसाधनो को लेता है। साथ ही यह भी बताता है कि हाथी ऊँट घोडे रथ विमान पर्वत नदी पशु-पक्षी यदि दिखाने हो तो उनके प्रतीकात्मक रूप किन वस्तुओ से तथा किस प्रकार बनाने चाहिये।

मच पर वृक्ष पर्वत झाडियाँ आदि पात्र के रूप मे प्रदर्शित करने की

परम्परा लगता है भरतों से पहले चली आ रही थी। आहार्य अभिनय के अन्तर्गत **सज्जीव** का विधान भरतों ने केवल इसीलिए किया था कि जो भी जड़ अथवा अर्ध-चेतन वस्तुएँ मन्च पर दिखानी हों सज्जीव के द्वारा उनका मानवीकरण किया जा सके। इस विधान में पेड़ पात्र बनकर बोल सकता है चल सकता है हँस सकता है अभिनय कर सकता है। आधुनिक नाटक शैली का (Physical Theatre) **फिजीकल थियेटर** सज्जीव-शैली का ही प्रतीक है।

सात्विक के अन्तर्गत वह मूल रूप से मन के पक्ष को लेता है कि अभिनय में मनोयोग को कैसे सम्मिलित करना चाहिये। मनुष्य की प्रकृति और उसका स्वभाव, पात्र की प्रकृति और उसके स्वभाव में किस विधि से प्रदर्शित किए जा सकते हैं?

धर्मियाँ वह दो बताता है- प्रथम **नाट्यधर्मी** तथा दूसरी **लोकधर्मी**। इसके सम्बन्ध में भरत का कथन है कि जब अभिनय में प्रसाधनों का प्रदर्शन साकेतिक रूप में किया जावे, वह नाट्यधर्मी विधि है जब यथार्थ वस्तुओं के सहयोग से अभिनय किया जावे वह परम्परा लोकधर्मी कहलाती है।

'नाट्यशास्त्र' में वर्णित धर्मियों के स्वरूप पर शायद अब तक अध्येताओं द्वारा गम्भीरता से विचार नही किया गया है। धर्मी शब्द धर्म से बना है। भारतीय सस्कृति मे धर्म शब्द बहुत प्रचलित एव सम्प्रदायसापेक्ष है। अत न तो लोग इसकी परिभाषा की आवश्यकता का अनुभव करते हैं और न इसे किसी छोटी चीज से जोड़ना चाहते हैं।

नाट्यशास्त्र में प्रयोग होने वाले शब्द नाट्यधर्मी और लोकधर्मी की मूल भावना नाट्य प्रस्तुति के शिल्प से सम्बन्धित है। यदि सामान्य दृष्टि से देखे तो भरत का यह कथन कि जब मच पर कोई पात्र मूल उपकरणों के लौकिक पदार्थ और प्रसाधनों के सहयोग से अभिनय करता है उसे लोकधर्मी विधि कहा जाता है ऊपर से गुजर जाता है किन्तु इस सिद्धान्त की गहराई पर विचार करें तो पता लगता है कि भरत की लोकधर्मी परम्परा आधुनिक नाटक की यथार्थवादी शैली है।

यथार्थवादी अभिनय-शैली मे भी मच पर समस्त उपकरण तथा प्रसाधन यथार्थ रूप मे दिखाये जाते हैं। आधुनिक शैली मे इन्हे प्रापर्टी कहा जाता है। पात्र को कमरे मे प्रवेश करके यदि जूते टाई खोलने हैं मुँह धोकर तौलिए से मुँह पौछना है तब पात्र इन सारे यथार्थ उपकरणो का सहारा लेता है। वह मच पर प्रवेश करके अपने असली जूते खोलता है पानी के जग से पानी लेकर सचमुच मुँह धोता है पश्चात् असली तौलिए से मुँह पौछता है। भरत की दृष्टि मे यह सब लोकधर्मी विधान है। नाट्यधर्मी विधान मे पात्र के प्रवेश के बाद पात्र को असली जूते नही खोलने अपितु पाँव नगे होते हुए भी उसे अभिनय के द्वारा यह प्रदर्शित करना है कि वह जूत खोल रहा है पश्चात् जग हाथ मे लेने का उससे पानी उँडेलने का मुँह धोने आदि का साकेतिक अभिनय करना है। पात्र के हाथ मे तौलिया नही है किन्तु उसे अभिनय ऐसा करना है जैसे वह तौलिया से मुँह पौछ रहा है। बिना उपकरणो के प्रस्तुत की जाने वाली परम्परा नाटयधर्मी है।

भरत अपने प्रयोग को चूँकि मात्र अभिनय प्रस्तुति तक सीमित नही रखता अपितु अपने प्रदर्शन को गायन वादन नर्तन से सयुक्त कर अपने पात्र से कलामय वैभव की जीवन्त और मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत कराता है। उस शैली मे मात्र यथार्थवादी अभिनय भरत की दृष्टि मे एक बहुत छोटी चीज है।

यथार्थवादी शैली का आधार अनुकरण है। दुनिया में जो चीज जैसी दिखाई देती है उसे उसी रूप मे प्रस्तुत कर देना अनुकरण कहलाता है। नाटक मे **अनुकरण का सिद्धान्त यूनान** की देन है। **अरस्तू** ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ '**द पोइटिक्स**' में नाटक को अनुकरणमूलक बताया है। इसके लिए उसने स्पष्टत '**इमीटेशन ऑफ एन एक्शन**' शब्द का प्रयोग किया है।

भारतीय नाट्य-पद्धति अनुकरणमूलक नहीं है। भरत की लोकधर्मी परम्परा अनुकरण के द्वारा यथार्थ को प्रस्तुत करने की अनुमति देती है किन्तु भरत लोकधर्मी परम्परा से अधिक महत्व नाट्यधर्मी परम्परा को देता

है। जिस बात के लिए अरस्तू 'अनुकरण' कहता है उसके लिए भरत **भावानुकीर्तनम्** कहता है।

भरत का कथन है कि प्रयोग मे तीनो लोको के चराचर जीवो के भावो का अनुकीर्तन प्रस्तुत किया जाता है। कीर्तन शब्द से स्पष्ट है कि भावो की प्रस्तुति सगीतमय होनी चाहिये। अर्थात् गायन वादन नर्तन से युक्त होनी चाहिए। प्रस्तुति गायन वादन नर्तनयुक्त होते ही कला के उत्कृष्ट रूप को प्रतिभासित करेगी। उसमे अभिनय के साथ-साथ सगीत कला तथा नृत्य कला का योग होने से दर्शको के हृदय को अनुरजित और आल्हादित करने की शक्ति और बढ जायेगी।

यथार्थवादी अभिनय मे केवल भूमिका करने वाले की एकाकी कला प्रस्तुत होती है। नाटयधर्मी शैली मे अभिनेता के साथ-साथ अनेक वाद्यो के वादको की नृत्य की भगिमाओ और लयकारी की नथा गायन की राग-रागनियो की कला का सामूहिक प्रयोग होता है। इस विधि मे कला के अनेक रूपो की सामूहिक शक्ति विकसित हो जाती है और उसकी प्रभावक शक्ति भी बढ जाती है।

चार प्रकार की वृत्तियो का सम्बन्ध पात्रानुकूल तथा रसानुकूल वाचन-शैली से है। कैशिकी वृत्ति का प्रयोग श्रृगार रस के प्रसगो मे किया जाता है। भारती वृत्ति सस्कृत पाठ प्रधान होती है और इसका प्रयोग पुरुष पात्रो द्वारा किया जाता है। आरभटी का प्रयोग वीर रस के प्रसग मे करना चाहिये।

प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे भरत का कथन है कि प्रत्येक क्षेत्र के निवासियो की वेश-भूषा रीति-रिवाज बोल-चाल आदि विशेष प्रकार की होती है। देश के निवासियो की मूलत चार प्रवृत्तियॉ हैं। **आवन्ती**, **पाचाली**, **दाक्षिणात्या** तथा **औद्रमागधी**। इन क्षेत्रो की बोल-चाल तथा रहन-सहन के अपने-अपने अलग तरीके हैं। अत प्रयोग मे इन क्षेत्रो के पात्र दिखाते समय उनकी प्रवृत्ति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

प्रयोग के सन्दर्भ मे शास्त्रकार दो प्रकार की सिद्धियो की चर्चा करते

हुए कहता है कि **दैविकी सिद्दि** होने पर प्रयोग काल मे आँधी वर्षा तूफान आदि का प्रकोप नही होता तथा प्रयोग प्राकृतिक प्रकोप से सुरक्षित रहता है। **मानुषी सिद्दि** के अन्तर्गत वह पात्र द्वारा बिना भूल किए पूर्ण मनोयोग से कार्य करने को कहता है।

स्वरो की सख्या सात बताते हुए वह कहता है कि प्रयोग मे प्रभाव उद्दीप्त करने के लिए गान्धर्व अर्थात् सगीत के **षडज**, **ॠषभ**, **गान्धार**, **मध्यम**, **पंचम**, **धैवत** तथा **निषाद** नामक सात स्वरो का प्रयोग किया जाता है। इनके दो ग्राम २२ श्रुतियाँ तथा अनेक अलकार होते हैं। लय के विभिन्न रूपो मे इनका निबन्धन किया जाता है।

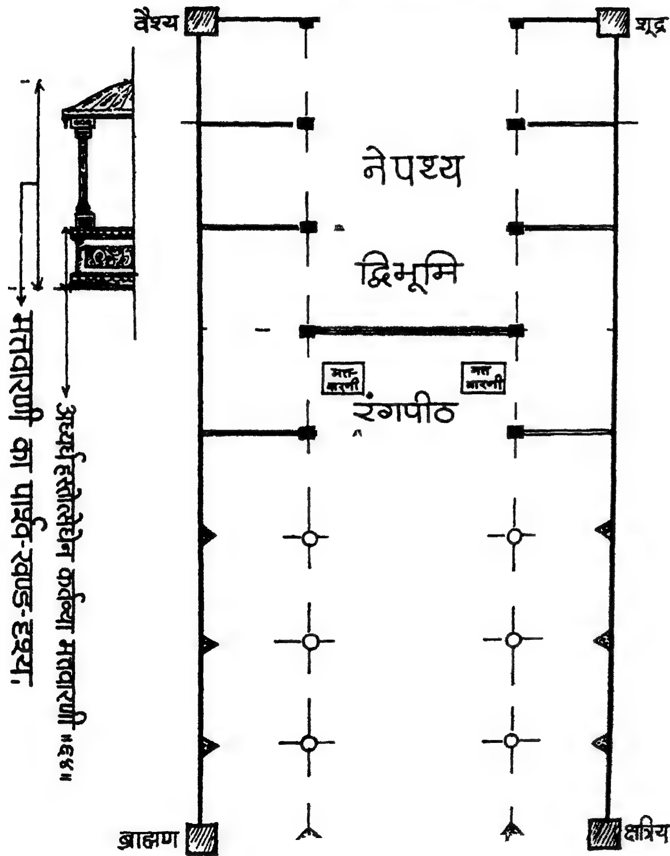
चार प्रकार के **आतोद्य** अर्थात् वाद्य यन्त्रो के सम्बन्ध में वाद्यो का वर्गीकरण करके उन्हे **तत्**, **सुषिर**, **घन** तथा **अवनद्ध** कहता है। तत् वाद्य के अन्तर्गत वह तार से बजने वाले सारे वाद्य रखता है सुषिर के अन्तर्गत फूँक से बजाये जाने वाले वाद्यों की गणना करता है घन मे वह धातु के बने मजीरे झाँझ आदि को लेता है जिनमें धातु के टकराने से ध्वनि उत्पन्न होती है तथा अवनद्ध वाद्यों में वह खाल से मढे हुए मृदंग पखावज आदि वाद्यो की गणना करता है।

पाँच प्रकार के गानो में वह **प्रावेशिक**, **आक्षेपिक**, **प्रासादिक**, **अन्तर** तथा **निष्क्राम** नामक पाँच प्रकार के गीतों की चर्चा करता है। इनका सम्बन्ध पात्रो के गायन से है। प्रवेश करते समय गायक को किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिए पश्चात् अन्य पात्र के गायन के आक्षेपण के समय गायक को किस बात का ध्यान रखना चाहिये। प्रासादिकी गान का तात्पर्य चलते हुए कथानक की रोचकता बनाये रखने से है। अन्तर गान का सम्बन्ध कथानक का प्रसग बदलते समय के गान का माधुर्य बने रहने से है तथा **निष्क्राम** गान का सम्बन्ध पात्र के मंच से प्रस्थान करने के समय गाये जाने वाले गान से है।

तीन प्रकार के रंग मण्डप का सम्बन्ध **प्रेक्षागृह** की रचना से है। इनमें वह **चतुरस्र**, **विकृष्ट** तथा **त्र्यस्र** नामक तीन विभिन्न नापों के प्रेक्षागृह बनाने की विधियाँ बताता है। इनके नाप वह हाथों से निर्धारित करता है।

सबसे बडा प्रेक्षागृह वह १९२ फीट लम्बा तथा ९६ फुट चौडा बताता है। मध्यम नाप में वह ९६ फीट लम्बा तथा ४८ फीट चौडा प्रेक्षागृह बनाने का निर्देश देता है तथा तीसरा **त्र्यस्र** रंगमच त्रिकोणात्मक आकार का होता था जो खुले मंच के प्रदर्शन के प्रयोगार्थ होता था।

प्रेक्षाग्रह - रचना - विधि



इन ११ तत्त्वो का विस्तार वह आगे के अध्यायो मे क्रमश करता है। प्रत्येक तत्त्व का नामकरण उसकी रचना विधि तथा प्रयोग के सम्बन्ध मे शास्त्रकार छोटी से छोटी बात बताने मे भी नही चूकता।

नाट्य एक तत्त्व •

प्रयोग के अन्तर्गत नाटय' एक तत्त्व मात्र है। नाटय शब्द का सम्बन्ध प्रयोग के अभिनय पक्ष से है। प्रयोग का प्रारम्भ शास्त्रकार एक विशेष विधि मे कराता है। इस विधि को वह पूर्वरग' का नाम देता है। पूर्वरग' मे छोटी बडी २० क्रियाये हैं।

'पूर्वरग' मूल कथानक से पूर्व प्रस्तुत करने का विधान है। इसमे गायक गायिकाओ वाद्य-वादको की क्रियाओ के विस्तृत निर्देश के अलावा मच पर आकर नर्तकियो के दल द्वारा कुछ देर नर्तन करने का विधान है।

इस नर्तन के द्वारा नर्तकियो का दल भिन्न-भिन्न आकारो की नयनाभिराम झाँकियाँ बनाता है जिन्हे शास्त्र मे **पिण्डी** कहा गया है। **पिण्डियाँ** चार प्रकार की बताई गई हैं जो आधुनिक **कोरयोग्राफी'** का सैद्धान्तिक आधार हैं ओर हर **पिण्डी** अन्त मे एक **टेबलो'** बन जाती है।

भरत का कथन है कि इस नटन-क्रिया मे नृत्य नृत्त तथा नाटय नामक तीन तत्त्वो का सयोग होता है और इन तीनो तत्त्वो से मिलकर अभिनय बनता है।

प्रयोग के प्रारम्भ मे वह नृत्त को बहुत महत्व देता है। नृत्त का स्वरूप स्पष्ट करते हुए वह लिखता है कि ताल और लय से युक्त शरीर के भागो का सचालन नृत्त है। इसमे शरीर के हिस्से लय और ताल मे चलते रहते हैं। नृत्त के समय केवल वाद्य वादकवाद्यो को बजाते हैं। नृत्य मे वाद्यो के साथ गायन भी सम्मिलित हो जाता है। समझने के लिए इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि मच पर किसी पात्र द्वारा ताथेई तत थेई तिगधा दिग-दिग थेई आदि बोलों के आधार पर नर्तन करना 'नृत्त' है और कृष्ण कन्हैया मुरली बजैया जमुना के तट पै बिराजे हैं' को प्रस्तुत करते समय भावो द्वारा

कन्हैया यमुना तट आदि दिखाना नृत्य है। अर्थात् नृत्त कला है तो नृत्य कला और काव्य का समन्वित रूप है।

प्रयोग के प्रारम्भ मे नृत्त तत्त्व की अनिवार्यता स्पष्ट करते हुए भरत कहता है कि नृत्त सदैव मन मे आल्हाद और उत्साह उत्पन्न करता है। वह यह भी स्पष्ट करता है कि पुत्र-प्राप्ति मागलिक अवसरो विवाह आदि के समय लोक का स्वभाव है कि लोग सहसा ही नाचने-थिरकने लगते है। इसी प्रकार प्रकृति के किसी सुरम्य दृश्य को देखकर लोग आनन्द मे झूमने लगते हैं। अत मनुष्य के चित्तानुरजन के लिए प्रयोग का प्रारम्भ नृत्त से करना चाहिए। ताकि अपने-अपने घरो से विभिन्न मन स्थितियाँ लेकर आने वाले दर्शको की भाव-भूमि रजनमय हो जाये।

शुद्ध नृत्त मनुष्य बहुत अधिक देर तक नही देख सकता। अत उसमे गीत मिश्रित करके नृत्य की क्रिया प्रारम्भ कर देनी चाहिए। नृत्य मे दर्शक शरीर की कलात्मक भगिमाओ के साथ-साथ काव्य का रस भी लेने लगता है। साथ ही जो काव्य के विशेष प्रेमी होते हैं उनकी तुष्टि होने लगती है। क्योकि प्रयोग एक लोकवादी कला है।

नृत्त और नृत्य का विवेचन शास्त्र मे **शरीरज अभिनय** के अन्तर्गत किया गया है। नृत्त और नृत्य शरीर के **छ अगो** से सम्पन्न किए जाते हैं।इसके बाद वह '**मुखज अभिनय**' की चर्चा करता है। मुखज की अभिव्यक्ति उपागो से होती है। **उपांगो** मे वह मुख के छ अवयव गिनाता है।

शास्त्रकार का मत है कि रस की अभिव्यक्ति हेतु **मुखज अभिनय** की आवश्यकता होती है और मुखज अभिनय ही यथार्थ मे नाटय तत्त्व का मूलाधार है। अत प्रयोग मे जब भी नृत्त और नृत्य के साथ रस की अभिव्यक्ति का काम आवेगा सदैव 'नाटय' नामक तत्त्व का उपयोग करना पडेगा। नाटय नामक तत्त्व का प्रयोग आवश्यक नहीं कि स्वतन्त्र हो यह कथानक की आवश्यकता पर निर्भर करता है कि किस प्रसग मे तीनो तत्त्व सम्मिलित रहने चाहिए और किस में एक या दो तत्त्वो से ही काम चल सकता है।

इस प्रसंग में यह धारणा स्पष्ट कर लेना अनुचित न होगा कि भरत के प्रयोग और पूर्वरंग आदि सम्बन्धी विवेचनों की पृष्ठभूमि में इस कला के उद्‌भव और विकास के इतिहास का रहस्य छिपा हुआ है।

कहा जाता है कि नटों की जाति के लोगों ने इस विद्या को विकसित किया था। नटों में अंग-विक्षेप की कला विद्यमान थी, ताल पर शरीर के कौतुक दिखाना उनका जातीय गुण था। संसार के प्रत्येक प्राणी में उन्नति और विकास करने की भावना चिरकाल से विद्यमान रही है। इस वर्ग के लोगों ने सैंकडो हजारो वर्ष तक संघर्ष करके अपने जातीय गुणों का गुणात्मक विकास किया, समय-समय पर अपनी कला को विकसित और परिष्कृत करने को उन्होंने अन्य लोगों का सहयोग लिया। जब वे इस कला में पारंगत हो गये तब उन्होंने अपनी जाति के मूल शब्द नट को प्रधानता देते हुए, इस विद्या के साथ नट नर्तन नाट्य शब्दों का प्रयोग स्थायी कर दिया।

शास्त्र के प्रारम्भ की कथा के अनुसार भरत ने अपने पुत्रो सहित सर्वप्रथम 'त्रिपुरादाह' की रचना डिम शैली पर की गई थी ओर 'अमृत मथन' की समवकार शैली पर। डिम शैली के प्रयोग का लक्षण बताते हुए शास्त्र मे लिखा है कि इसमे माया इन्द्रजाल मल्ल-विद्या आदि की प्रधानता रहती है। १६ पात्र होते हैं इनमे इन्द्र देव दानव राक्षस भूत-प्रेत आदि दिखाये जाते हैं। समवकार भी कौतुक प्रधान शैली थी।

भरत का प्रयोग धीरे-धीरे दर्शन अध्यात्म और धर्म की सरिताओ मे स्नान करता हुआ ऊंचाई के उस शिखर पर पहुँच गया जहाँ इसका लक्ष्य दर्शको का मात्र मनोरजन करना ही नही था अपितु भरत का प्रयोग दर्शको की चित्तवृत्ति को सुसस्कारित करने का एक महान् **नेत्रयज्ञ** बन गया सुसस्कारित वृत्तियोवाले सभ्य और आदर्श लोकवादी समाज की रचना का एक प्रकल्प सिद्ध हुआ सवेदनशील और निष्कलक मानव की रचना का एक कलात्मक अनुष्ठान बना। उसका प्रयोग केवल दिखाने के लिए नहीं, केवल मनोरजन के लिए नही अपितु समाज के परिष्कार एवम् विकास के लिए प्रेरणा का पीयूष बहाने के लिए है। जो प्रयोग समाज के लिए उपयोगी

नही वह उसकी प्रारम्भिक नट-विद्या तक सीमित है।

आज ऐसे लोग जो गायन कला मे प्रवीण हो वाद्य यन्त्रों को बजाने मे सुदक्ष हो, नृत्यकला के मर्मज्ञ हो और अभिनय भी उच्चकोटि का करते हो- उनकी प्रतिभा के सामने भला कौन है जो सिर न झुका दे?

आज का नाटक तो भरत के अनुसार केवल **शुद्ध प्रयोग** तक सीमित हे उसे **चित्र प्रयोग** बनना है किन्तु उसकी यात्रा भ्रान्तियो के जाल मे फँसकर रुक गई है। आज का रगकर्मी यह निश्चय नही कर पा रहा है कि उसे सफलता प्राप्त करने के लिए कौन सा मार्ग चुनना चाहिये? उसके चारो ओर विभिन्न प्रकार की नाटय-शैलियो का एक चक्रव्यूह खडा कर दिया गया है जिसमे विदेशी आयातित सिद्धान्त और शैलियों के स्तम्भ खडे हैं। समाज मे एक फैशन सा बन गया है कि विदेशी चीजें अपनाओ।

सस्कृति का स्वरूप माँ की तरह होता है उससे हमारी परम्परा का भावात्मक पक्ष जुडा रहता है। अत हमे कभी न कभी यह सोचने को बाध्य होना पडेगा कि हमारा प्रयोग विदेशी शैलियों से नही भारतीय शैलियों से सफल होगा।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश के भाषायी रगमच हैं। मराठी रगमच बगाली-रगमच तमिल और तेलगू के रंगमच मलयालम ओर कन्नड के रंगमच अपने कलेवर में नाट्यशास्त्रीय परम्परा के सिद्धान्तों से जुडे हुए हैं। अत उनकी अपनी पहचान है और आज सिने तथा दूरदर्शन के युग में भी अपनी निजी शक्ति से जीवन्त और सक्रिय हैं।

इनके अलावा देश के विभिन्न क्षेत्रों में चलने वाले परम्परित नाट्य रूप जिन्हें आजकल भ्रान्तिवश लोकनाट्य कहा जाता है-में भी नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अंग जीवित हैं, अत उनका वर्चस्व और मौलिकता अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं।

भरत की **पूर्वरंग** की कल्पना भी अनूठी है। कहा जा चुका है कि वह **प्रयोग** से पहले अनिवार्य रूप से **पूर्व रंग** करने का निर्देश देता है। पूर्वरंग

दरअसल प्रदर्शन से पूर्व पूजा का विधान तो है ही उसकी २० क्रियाएँ प्रस्तुति मे भाग लेने वाले सभी रगकर्मियो के **मानसिक अनुशासन** की कलात्मक **व्यवस्था** है।

उदाहरण के लिए वह पूर्वरग की क्रियाओ मे **आरम्भ**, **आश्रावण**, **वक्त्रपाणि**, **संघोटना**, **परिघट्टना** आदि से चर्चा प्रारम्भ करता है। ये क्रियाएँ आज भी सम्पन्न की जाती हैं और केवल भारत ही नही विश्व के हर थियेटर मे सम्पन्न की जाती हैं। अन्तर मात्र यह है कि इनकी आज के थियेटर मे थ्यौरी नही है केवल व्यावहारिक रूप मे सम्पन्न होती हैं। भरत ने इनकी भी **थ्यौरी** बना दी थी और **थ्यौरी** बनाकर उन क्रियाओ का क्रम निश्चित कर दिया था। जैसे '**आरम्भ**' का अर्थ है वाद्य-वादक और गायको का यथा-स्थान बैठ जाना। क्रिया सख्या २ '**वक्त्रपाणि**' का अर्थ है प्रत्येक वाद्य-वादक को हाथ चलाने का जितना स्थान चाहिये उसे सयोजित कर लेना। '**संघोटना**' का अर्थ है तत् वाद्य-वादक अर्थात् वीणा आदि बजाने वालो को अपने वाद्य के तारो पर हाथ चलाकर उन्हे चैक कर लेना। "**परिघट्टना**" का अर्थ है **मृदग-वादक** खाल पर आटा लगाकर दोनो ओर की पूडियो पर हाथ की घुटाई करके अपने वाद्य की परीक्षा कर ले- इत्यादि।

इन क्रियाओ को विधिसम्मत रूप देकर भरत ने इनका नामकरण कर दिया और इनकी परिभाषा स्पष्ट कर दी। भरत के प्रयोग मे यह क्रम देने से वादक और गायक अनुशासित हो गये। हर व्यक्ति अपने क्रम से अपने वाद्य की परीक्षा करता था ऐसा नही कि कभी तबलेवाला हथौडी पीट रहा है कभी सितारवाले खूँटी ऐंठ रहे हैं। थोडी देर बाद वशीवाला शुरू हो गया तो बीच मे ही गायक अपना अलाप लेकर स्वर सम्भालने लगा। भरत इन क्रियाओ के नामकरण से इनका क्रम निर्धारित कर देता है और उस क्रम में जब जिसका नम्बर आता है तब वह अपने वाद्य को मिलाता-सँवारता है।

पूर्वरंग की आगे की क्रियाओं मे भरत पूजा का काम भी मच पर कराता है। सूत्रधार और इसके दो सहायक रंगभूमि मे आते हैं। एक सहायक के

हाथ मे जलपात्र होता है दूसरे हाथ मे पूजा की थाली। सूत्रधार आचमन और प्रक्षालन करके इन्द्र के ध्वज की पूजा करता है। प्रयोग निर्विघ्न सम्पन्न हो इसकी प्रार्थना के साथ-साथ राजा की अनुशसा तथा लोकहित की कामना करता है।

पूर्वरग

पात्र	प्रत्याहार	६ परिघट्टना	११ आसारित	१६ रंगद्वार
वाद्य वादक	अवतरण	७ संघोटना	१२ उत्थापन	१७ चारी
गायक	३ आरम्भ	८ मार्गासारित	१३ परिवर्तन	१८ महाचारी
गायिकाएँ	४ आश्रावणा	९ विघट्य	१४ नान्दी	१९ त्रिक
सूत्रधार	५ वक्त्रपाणि	१० गीत	१५ शुष्कावकृष्टा	२० प्ररोचना
नान्दी				

मार्य — पारिपार्श्वक — विदूषक — नर्तकियाँ — आचार्य

आजकल प्रदर्शन प्रारम्भ होने से पूर्व सफलता की कामना का काम नेपथ्य मे किया जाता है। इसके लिए हिन्दी के स्थान पर अग्रेजी मे बोला जाता है-'**विश यू द बेस्ट ऑफ लक**'। तब यह काम सूत्रधार प्रत्यक्ष करता था अब यह काम परोक्ष मे निर्देशक करता है।

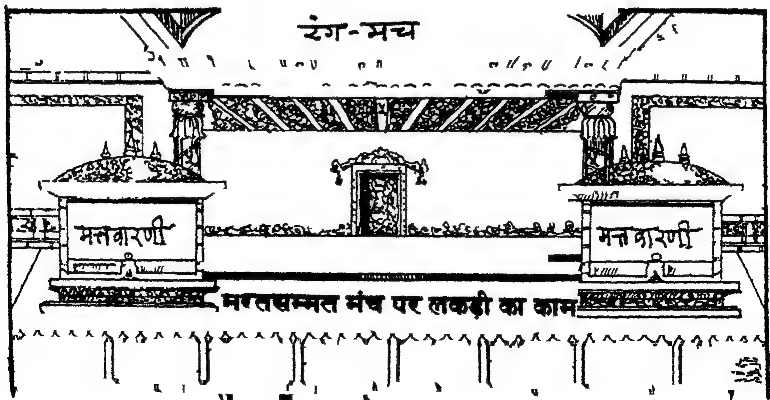
जहाँ तक पूजा का प्रश्न है वह भी बहुत अनिवार्य है, क्योकि दैवीय विपत्तियो या विघ्नो से आदमी तब भी डरता था आज भी डरता है। आज सिने-जगत जैसे क्षेत्र मे चाहे कोई मुसलमान निर्माता फिल्म बना रहा हो मुहूर्त वह भी करता है और मुहूर्त के समय कैमरे पर नारियल फोडा जाता है कैमरे पर माला डाली जाती है प्रसाद बाँटा जाता है। यह पूजा का विधान तब मच पर प्रत्यक्ष होता था अब नेपथ्य मे होता है।

भरत की दृष्टि मे रगकर्म की कोई क्रिया व्यक्तिसापेक्ष नहीं हर रगकर्मी के हर छोटे-बडे काम का सम्बन्ध प्रयोग से अनिवार्य रूप से जुडा हुआ है। हर छोटे बडे कामो को क्रमिक रूप से करने की सूची उसके मस्तिष्क मे बन चुकी थी। उसने प्रत्येक क्रिया की महत्ता समझते हुए उनके नाम रख दिये थे उनकी विशद् परिभाषाये लिख दी थीं और उनके प्रयोग की विधियाँ बना डाली थी। जिन विधियो को भरत ने आज से हजारों साल

पहले निश्चित कर दिया था वे आज भी रंगकर्म का अनिवार्य अग बनी हुई हैं।

भरत रगकर्म के क्षेत्र में चेतन तत्त्व को महत्व देता है। प्रयोग की सफलता के लिए वह चेतन मनुष्य को मुख्य माध्यम मानता है और मनुष्य के तन और मन को अधिक से अधिक सक्रिय करके प्रयोग की सफलता का उपकरण बनाता है। जड वस्तुओं को वह महत्व नहीं देता। यहाँ तक कि जब उसे प्रयोग में मच पर पर्वत वृक्ष फल-फूल पत्थर शस्त्र रथ विमान आकाश जैसी जड वस्तुएँ प्रदर्शित करनी पडती हैं वह चेतन मनुष्य की प्रतीकात्मक मुद्राओं के द्वारा उन्हें प्रस्तुत कराने की विधियाँ बताता है।

पशु-पक्षी, गृह नक्षत्र संख्याएँ, ऋतुएँ सूर्य चन्द्र, झरना नदी सागर आदि को प्रदर्शित करने के लिए वह प्रतीकात्मक मुद्राएँ निर्धारित करता है। उसकी दृष्टि में चेतन पात्र एक सशक्त माध्यम है, वह उसी के द्वारा मच का सारा कार्य व्यापार सुसम्पन्न कराता है। वह जानता है कि अनुभूति, अभिव्यक्ति साकेतिकता प्रतीकात्मकता, आदि सभी बातें चेतन मनुष्य के द्वारा अभिव्यक्त करायी जा सकती हैं। उपकरणों की अपेक्षा पात्र को अधिक सशक्त बनाना लाभकारी है।



भरतसम्मत मंच पर लकड़ी का काम

अध्याय चार

अभिनय

भरत निर्देश देता है कि जिस प्रकार जीव एक शरीर को त्याग कर अन्य शरीर में प्रवेश करके उसके अनुरूप कार्य करने लगता है उसी प्रकार भूमिका करने वाले पात्र को मंच पर प्रवेश करने से पूर्व अभिनीत करने वाले पात्र का मानसिक स्मरण करना चाहिए और उसी मनोदशा मे उस पात्र जैसी वाणी और आंगिक चेष्टाएँ बनानी चाहिए भरत का अभिनय मानव के मनोविज्ञान की मुद्रासापेक्ष्य प्रस्तुति है।



देशवेषानुरूपण पात्र योज्य स्वभूमिषु ।

अपनी भूमिका देश तथा वेश के अनुसार करनी चाहिये। ३५ ११

• • •

यतोहस्तस्ततो दृष्टि यतो दृष्टिस्ततो मन ।
यतोमनस्ततो भाव यतो भावस्ततो रस ।।

जहाँ हाथ जाय वही दृष्टि का जाना चाहिए जहाँ दृष्टि जाय वहाँ मन का जाना चाहिये जहाँ मन जाये वहाँ भाव का जाना चाहिए तथा जहाँ भाव जाये वहाँ रस का जाना चाहिये।

'नाटयशास्त्र' मे **अभिनय** का स्वरूप बहुत विशाल और व्यापक है। भरत ने शास्त्र के आठवे अध्याय मे अभिनय शब्द का अर्थ बताते हुए उसके भेद तथा सम्बन्धित अगो का बहुत बारीकी से विवेचन किया है।

इस सम्बन्ध मे सबसे पहले यह बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि आजकल हम अभिनय का अर्थ अग्रेजी के (Acting) '**एक्टिग**' शब्द से लेने लगते हैं। अग्रेजी शब्द '**ऐक्टिग**' तथा **अभिनय** मे जमीन आसमान का अन्तर है। शास्त्र मे वर्णित अभिनय शब्द बहुत व्यापक है। इसकी इतनी शाखा और उपशाखाये हैं कि अग्रेजी का '**ऐक्टिग**' शब्द उसके सामने बहुत छोटा और अर्थहीन सा लगता है।

अभिनय शब्द का स्वरूप स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार ने लिखा है - '**आगे की ओर ले जाने वाला तत्त्व, सबको आगे की ओर ले जाने मे नेतृत्व प्रदान करने वाला।** अर्थात् अभिनय उस शक्ति का नाम हैं जो हाव-भाव मुद्रा चेष्टाये वाणी, विचार आदि को नेतृत्व प्रदान करती हुई अपने मूल स्थान से आगे की ओर प्रेरित करती है। नेतृत्व के द्वारा वह विभिन्न अगो को सन्तुलित कर उनका उद्देश्य समान और सामूहिक बनाये रखती है।

भरत अभिनय के चार भेद करता है। इन्हे शास्त्र मे **आगिक वाचिक**, **आहार्य** और **सात्त्विक** कहा गया है। **आगिक** को परवर्ती आचार्यों ने **कायिक** नाम भी दिया है।

आंगिक अभिनय के वह तीन रूप बताता है। इन्हे **शरीरज**, **मुखज** तथा **चेष्टाकृत** कहता है। इन तीनों का सम्बन्ध शरीर के विभिन्न अंगो से है। भरत का चिन्तन इतना सूक्ष्म है कि वह विषय का प्रतिपादन करते

समय छोटी से छोटी बात पर भी गहराई से विचार करता है।

शरीरज् •

आगिक अभिनय के अन्तर्गत वह सर्वप्रथम **शरीरज** को लेता है और कहता है कि शरीरज अभिनय **अगो** द्वारा सम्पन्न किया जाता है। **अंगों** की सख्या वह छ बताता है।इन्हे क्रमश **सिर**, **हाथ**, **वक्ष**, **पार्श्व**, **कमर** तथा **पाँव** कहता है। यह उसका प्रारम्भिक विभाजन है। जिसमे वह शरीर



के मोटे तौर पर छ भाग करता है और उनके सचालन की विधिया बताता है। भरत अभिनय के लिए **सिर चलाने की १३ विधियाँ** बताता है।इन विधियो के उसने नाम रखे हैं। इन्हें बनाने की विधियाँ विस्तार से बताई

गई हैं। पश्चात् यह बताया है कि अभिनय में इनका प्रयोग किन-किन बातो को दिखाने के लिए किया जाता है।

शास्त्रकार ने अध्याय ८ के श्लोक सख्या १६ मे इसे **शिर-कर्म** कहा है और इनके १३ नाम क्रमश इस प्रकार रखे हैं -

१ - आकम्पित	२ - कम्पित	३ - धुत
४ - विधुत	५ - परिवाहित	६ - आधूत
७ - अवधूत	८ - अचित	९ - निहचित
१० - परावृत्त	११ - उत्क्षिप्त	१२ - अधोगत
	१३ - लोलित	



शिर-कर्म



शास्त्रकार क्रमश प्रत्येक प्रकार के सिर चलाने की विधिवत् क्रिया समझाता है। जैसे **आकम्पित** के लिए भरत कहता है कि सिर को ऊपर नीचे धीरे-धीरे चलाने की क्रिया को 'आकम्पित' कहा जाता है तथा तेजी से चलाने की क्रिया को **कम्पित'** कहा जाता है।

हाथो से बनने वाली चौसठ प्रकार की हस्त मुद्राये बताई गई हैं। इन्हे शास्त्र मे एक हाथ की दोनो हाथो की तथा नृत्त-हस्त की मुद्राएँ कही गई हैं। प्रत्येक मुद्रा का नामकरण किया गया है। साथ ही उनके बनाने की विधियाँ और उनके अभिनय के प्रसगो का वर्णन किया गया है।

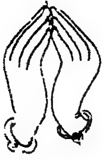
शास्त्र के ९वे अध्याय मे श्लोक सख्या ४ से हाथो की मुद्राओ का विवेचन प्रारम्भ होता है। इसमे शास्त्रकार सबसे पहले **२४ प्रकार** के **असयुत हस्त** अर्थात् एक हाथ की मुद्राओ का वर्णन करता है जिनके नाम इस प्रकार हैं -

१ पताक	२ त्रिपताक	३ कर्तरीमुख
४ अर्धचन्द्र	५ अराल	६ शुकतुण्ड
७ मुष्टि	८ शिखर	९ कपित्थ
१० खटकामुख	११ सूच्य	१२ पद्मकोश
१३ सर्पशीष	१४ मृगशीर्ष	१५ कागूल
१६ अलपद्म	१७ चतुर	१८ भ्रमर
१९ हसास्य	२० हसपक्ष	२१ सदेश
२२ मुकुल	२३ ऊर्णनाभ	२४ ताम्रचूण

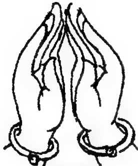
इसके बाद भरत **सयुक्त हस्त** अर्थात् दोनो हाथो की मुद्राओ का वर्णन श्लोक ८ तथा ९ मे करता है। ये मुद्राये **१३ प्रकार** की बताई गई हैं। इनके नाम शास्त्र मे इस प्रकार दिए गये हैं।

१ - अजलि	२ - कपोत	३ - कर्कट	४ - स्वस्तिक
५ - खटकावर्धमान	६ - उत्सग	७ - निषेध	८ - दोल
९ - पुष्पपुट	१० - मर्कट	११ - गजदन्त	१२ - अवहित्य
१३ - वर्धमान			

संयुत हस्त



अंजलि



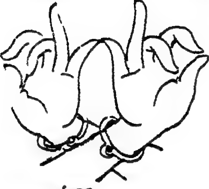
कपोत



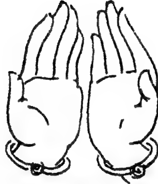
कर्कट



स्वास्तिक



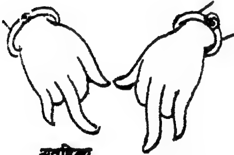
खटकावर्धमान



पुष्पपुट



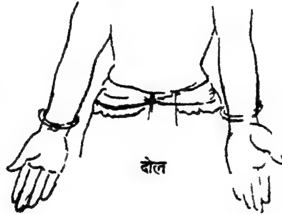
वर्धमान



अवहित्थ



मकर



दोल



निषेध



उत्संग



गजदन्त

भरत नृत्त हस्त की मुद्राओं का विवेचन श्लोक सख्या १० से १६ तक करता है। इन हस्त-मुद्राओं का मुख्य प्रयोग नृत्य में किया जाता है। इन मुद्राओं के वह २७ प्रकार बताता है।

१- चतुर	२- उद्वृत्त	३- तलमुख
४- स्वास्तिकरेचित	५- खटकामुख	६- आविद्धवक्र
७- सूचीमुख	८- रेचितान्वित	९- अर्धरेचित
१०- उत्तानवंचित	११- नितम्ब	१२- केशबन्ध

१३ लतारव्य	१४ करिहस्त	१५ पक्षवचित
१६ पक्षप्रद्योतक	१७ गरुडपक्ष	१८ दण्डपक्ष
१९ ऊर्ध्वमण्डल	२० पार्श्वमण्डल	२१ उरोमण्डल
२२ उरपार्श्वार्धमडल	२३ मुष्टिकस्वास्तिक	२४ नलिनीपद्मकोश
२५ उल्वण	२६ ललित	२७ वलित

प्रत्येक हस्त-मुद्रा को बनाने के लिए शास्त्र मे पहले यह बताया गया है कि अमुक मुद्रा बनाने के लिए तर्जनी अगुली को मध्यमा को अनामिका को कनिष्ठा को या अगूठे को कितना मोडना चाहिए। पश्चात् यह बताया गया है कि किस हस्त-मुद्रा का प्रयोग अभिनय मे किस बात को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।

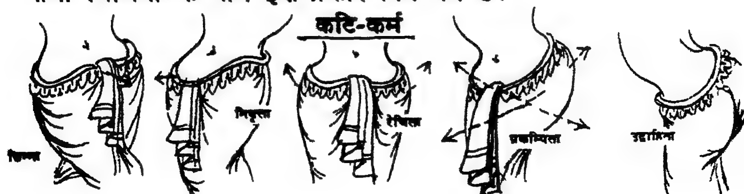
उर अर्थात् वक्ष चलाने की शास्त्र मे ५ विधियाँ बतायी गई हैं। इनका उल्लेख शास्त्र के अध्याय ९ के श्लोक सख्या २५१ मे दिया गया है। इनकी ५ विधियाँ बताते हुए भरत ने लिखा है -

१ - कम्पन २ - वलन ३ - स्तम्भन ४ - उदवर्तन तथा ५ विवर्तन।

इसी प्रकार **पार्श्व** अर्थात् बगलो के भाग चलाने की भरत ने ५ विधियाँ और उनके प्रयोग बताए हैं।

भरत ने अध्याय ९ के श्लोक २३४ मे इसका विवेचन प्रस्तुत किया है। बगलो को चलाने की पाँचो विधियो के नाम इस प्रकार दिये हैं - १ - नत २ - उन्नत ३ - प्रसारित ४ - विवर्तित ५ - अपसृत।

कटि अर्थात् कमर के चलाने की ५ विधियाँ और उनके प्रयोग बताये गये हैं। शास्त्र के इसी अध्याय के श्लोक सख्या २४४ मे कटि चलाने की पाँचो विधियो के नाम इस प्रकार दिये गये हैं।



१ - छिन्ना २ - निवृत्ता ३ - रेचिता ४ - कम्पिता ५ - उद्वाहिता।

इसी क्रम म **पॉव चलाने** की ५ विधियाँ उनके नाम और प्रयोग शास्त्र म स्पष्ट किये गये है। भरत **पाद-कर्म** का विवेचन अध्याय ९ क श्लाक सख्या २६६ मे करता है। **पाद-कर्म** मे वह पॉव के तलवे चलाने की क्रियाओ को मुख्य रूप से लेता है। जिन्हे वह १ - उद्घट्टित २ - सम ३ अग्रतलसचर ४ - अचित तथा ५ - कुंचित कहता है।



इन क्रियाओ मे बताया गया है कि पजो पर खडा होना ऐडी पर खडा होना पाँवो की अगुलियो को ऊपर की ओर उठाना या उन्हे सकुचित आदि करने का प्रयोग किस विधि से करना चाहिये। आश्चर्य की बात यह है कि हर विधि का नामकरण किया गया है और उसे सम्पन्न करने के निर्देश विस्तार से दिए गये हैं। आगिक अभिनय के अन्तर्गत शरीरज मुखज और चेष्टाकृत नामक ३ भेदो मे से यदि केवल शरीरज को ही ले तो उसके ९७ अग हो जाते हैं।

मुखज अभिनय •

शास्त्रकार का कथन है कि **मुखज अभिनय उपागो** से सम्पन्न किया जाता है। भरत मुख के अवयवो को **उपाग** कहता है। अगो की भाँति उपागो की सख्या भी शास्त्र मे ६ बताई गई है। इन्हे **नेत्र**, **भौह**, **नाक**, **अधर** **गाल** तथा **ठोडी** कहा गया है।



भरत कहता है कि अगो द्वारा किया जानेवाला अभिनय शरीरज कहलाता है उपागो द्वारा किया जानेवाला मुखज तथा शरीर तथा मुख से बचे हुए शेष भागों द्वारा किया जाने वाला अभिनय **चेष्टाकृत** की श्रेणी मे आता है।

उपागो के सन्दर्भ मे नेत्रो के सचालन की वह ३६ दृष्टियाँ बताता है। इनमें ८ दृष्टियाँ ८ रसो की ८ स्थायी भावो की तथा २० दृष्टियाँ व्यभिचारी भावो से सम्बन्धित हैं। भरत इन्हे शास्त्र मे **रस-दृष्टि**, **स्थायी-भाव-दृष्टि** तथा **सचारी-दृष्टियाँ** नाम देता है।

नेत्रो के अभिनय को भरत बहुत महत्व देता है। इस अभिनय मे वह पुतलियो के विभिन्न प्रकार के सचालन की विधियाँ बताता है पश्चात् अभिनय मे उनके प्रयोग समझाता है।

शास्त्र मे छत्तीस दृष्टियो के नाम इस प्रकार हैं। रस की आठ दृष्टियाँ १ -कान्ता २ - हास्या ३ - करुणा ४ - रौद्री ५ - भयानका ६ - अद्‌भुता ७ -वीरा, ८ -बीभत्सा हैं। स्थायी भावो की १ - स्निग्धा २ - हृष्टा, ३ - दीना ४ -क्रुद्धा ५ - हृप्ता, ६ - भयान्विता, ७ - जुगुप्सिता ८

विस्मिता कही गयी है। इन १६ दृष्टियो के बाद २० दृष्टियॉ सचारी भाव की बताई गई हैं। इनके नाम हैं - १ - शून्या २ - मलिना ३ - भ्रान्ता ४ - लज्जान्विता ५ - ग्लाना ६ - शकिता ७ - विषण्णा ८ - मुकुला ९ - कुचिता १० - अभितप्ता ११ - जिह्मा १२ - सललिता १३ - वितर्किता १४ - अर्धमुकुला १५ - विभ्रान्ता १६ - विप्लुता १७ - आककरा १८ - विकोशा १९ - त्रस्ता २० - मदिरा।

दष्टियो के पश्चात् वह **भृकुटियो** के प्रयोग की चर्चा करता है। शास्त्र के अध्याय ८ श्लोक ११८ मे इसे **भ्रू-कर्म** कहा गया है और इसके प्रयोग की ७ विधियाँ बतायी गई हैं। इन्हे भरत ने इस प्रकार नाम दिए हैं।

१ - उत्क्षेप २ - पातन ३ - भृकुटी ४ - चतुर ५ - कुचित ६ - रेचित ७ - सहज।

नासिका के प्रयोग पर प्रकाश डालते हुए भरत ने शास्त्र के अध्याय ८ के श्लोक १२९ मे इसे '**नासा-कर्म**' कहा है और नाक के प्रयोग की छ विधियाँ निर्धारित की हैं।

१ - नता २ - मन्दा ३ - विकृष्टा ४ - उच्छवासा ५ - विकूणिता ६ - स्वाभाविका।

अधर के भरत ने ६ प्रयोग बताए हैं। इसी अध्याय के श्लोक १४२ मे अधर अर्थात् ओष्ठ चलाने की छ विधियो के नाम हैं -

१ - विवर्तन २ - कम्पन ३ - विसर्ग, ४ - विनिगूहन ५ - सदष्ट ६ - समुदगम। इसके पश्चात् भरत श्लोक सख्या १३६ मे **कपोलो** के प्रयोग की ६ विधियाँ बताता है। इसे भरत '**गण्डकर्म**' कहता है। इनके नाम हैं - १ -क्षाम २ - फुल्ल ३ - घूर्ण ४ - कम्पित ५ - कुचित ६ - सम। उपागो के द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले क्रम में आगे भरत **चिबुक** अर्थात् ठोडी के अभिनय की ७ विधियाँ बताता है। इन्हे शास्त्रकार १ - कुट्टन २ - खण्डन ३ - छिन्न ४ - चुक्कित ५ - लेहित, ६ - सम ७ - दष्ट कहता है।

प्रत्येक उपाग की प्रत्येक सचालन-क्रिया का शास्त्र मे नामकरण किया हुआ है ताकि शिक्षा के समय आचार्य को अधिक व्याख्या न करके वाछित क्रिया के लिए उसके नाम का उच्चारण भर करना पड़े। उदाहरणार्थ कोई भाव बनाना हो तो बस आचार्य इतना कहे कि वीरा दृष्टि उत्क्षेप भृकुटि विकूणिता नासिका सदष्ट अधर आकुचित कपोल और छिन्न चिबुक का प्रयोग करो।

भरत के सिद्धान्त मे भूमिका करनेवाले पात्र का प्रशिक्षण अग उपाग और शरीर के अन्य भागो की इकाई के अभ्यास से प्रारम्भ होता है। अभिनय के समय प्रयोग मे आने वाले शरीर के हर भाग के सचालन की क्रियाएँ इसने निर्धारित कर दी थी। एक-एक करके उनका अभ्यास शिक्षा लेनवाले को करना पडता था। उनमे प्रवीण हो जाने के बाद उससे शरीर की सयुक्त क्रियाएँ कराई जाती थी। करण तथा अगहार उन्ही क्रियाओ का एक रूप है। इन क्रियाओ की शिक्षा के बाद आचार्य को केवल क्रिया का नाम लेना पडता था। आजकल के पात्र के मुख पर वाछित भाव लाने के लिए कहना पडता है कि आप इसे देखकर डर जाती हैं घबराने लगती हैं थोडा चहरे पर ऐसा भाव लाइये वैसा लाइये। थोडी घबराहट दिखाइए । इसी ऐसा-वैसा मे कभी-कभी घण्टो नष्ट हो जाते हैं। निर्देशक को न तो यह ज्ञान होता है किस भाव को दिखाने के लिए भौहे नासिका पुतलियाँ अधर या कपोल आदि को किस प्रकार बनाना चाहिए न उसे भरत के अनुसार इनके नाम मालूम होते हैं।

आगिक अभिनय के अन्तर्गत अग और उपागो के बाद भरत तीसरा भेद **चेष्टाकृत** बताता है। चेष्टाकृत के अन्तर्गत वह **अगुली भुजाएँ पेट कर**, **जघा पलक**, **ग्रीवा** तथा **पुतलियो** के सचालन के विस्तार से नियम बताता है। अंगुली चलाने की **तिर्यक ऊर्ध्व अधोमुख**, **अंचित**, **अपविद्ध**, **मण्डलगति स्वस्तिक**, **पृष्ठानुसारी उद्वेष्टित** तथा **प्रसारित** नामक १० विधियाँ शास्त्र मे बताई गयी हैं।

अध्याय ९ के श्लोक २५७ मे वह जघा-कर्म अर्थात् जाघ चलाने की ५ विधिया बताता है। इन्हे वह १ - आवर्तित २ - नत ३ - क्षिप्त ४ - उद्वाहित तथा ५ - परिवृत्त कहता है। इसी अध्याय मे वह श्लोक सख्या

रस की दृष्टियाँ


कान्ता


हास्या


करुणा


रौद्री


भयानका


अद्भुता


वीरा


बीभत्सा

स्थायी भाव की दृष्टियाँ


स्निग्धा


हृष्टा


दीना


क्रुद्धा


दप्ता


भयान्विता


जुगुप्सिता


विस्मिता

मुख-कर्म



विनिवृत्त



विधुत



निभुग्न



भुग्न



विवृत्त



उद्वाहित

तारा-कर्म



भ्रमण



वलन



पातन



चलन



सप्रवेशन



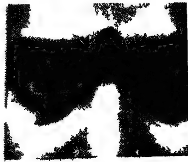
विवर्तन



उद्वृत्त



निष्क्राम



प्राकृत

अधर-कर्म



विवर्तन कम्पन



विसर्ग विनिगूहन



सन्दष्ट समुद्गम

चिबुक-क्रिया



कुट्टन



खंडन



छिन्न



चुक्कित लेहिन सम दष्ट

गण्ड-कर्म



क्षाम फुल्ल पूर्ण कम्पित



कुञ्चित सम

भ्रू-कर्म



उत्क्षेप



पातन



भ्रुकुटि



चतुर



कुञ्चित



रेचित



सहज

२४१ मे **'जठर-कर्म'** अर्थात् पेट के सचालन की ३ विधियो का विवेचन प्रस्तुत करता है। इन्हे वह १ - क्षाम २ - फुल्ल तथा ३ -पूर्ण कहता है।

अध्याय ८ के श्लाक सख्या १११ मे वह ९ प्रकार के **'पुट-कर्म'** अर्थात् पलको की क्रियाओ का विवेचन करता है। इन्हे वह क्रमश १ उन्मेष २ - निमेष ३ - प्रसृत ४ - कुचित ५ - सम ६ - विवर्तित ७ -स्फुरित ८ - पिहित तथा ९ - विताडित कहता ह।

अध्याय ९ के श्लोक १४७ मे शास्त्रकार ने ६४ प्रकार के हस्तको काचलाने की १९ विधियो का वर्णन किया है। इन्हे शास्त्र मे **हस्त-प्रचार'** कहा गया है। इनके नाम क्रमश - १ आकर्षण २ - विकर्षण ३ - व्याकर्षण ४ - परिग्रह ५ - निग्रह ६ - आवाहन ७ - नोदन ८ - सश्लेषण ९ - वियोग १० - रक्षण ११ - मोक्षण १२ - विक्षेपण १३ - विसर्ग १४ - तर्जन १५ - छेदन १६ - भेदन १७ - स्फोट १८ - मोटनतथा १९ - ताडन नाम बताए गए हैं। शास्त्रकार ने इन सब के अभिनय सम्बन्धी प्रयोगो पर विस्तार से प्रकाश डाला है। भरत के द्वारा केवल आगिक से सम्बन्धित क्रियाओ की सख्या २११ हो जाती है।

आगिक अभिनय के सन्दर्भ मे यह बात अब पूर्णत स्पष्ट हो जानी चाहिए कि भरत अभिनय के लिए जो शिक्षा देता है उसमे नृत्य भी सम्मिलित हैं। अत उसका प्रयोगकर्त्ता मात्र अभिनेता नही नर्तक भी है। इसीलिए वहप्रयोगज्ञअर्थात् प्रयोगकर्त्ता के लक्षण बताते हुए कहता है कि उसे गायन वादन नर्तन मे प्रवीण होना चाहिए। साथ ही उसे सारे नाटयाँगो का ज्ञाता होना चाहिए।

वाचिक अभिनय •

आगिक के बाद शास्त्र मे **वाचिक अभिनय** का विवेचन किया गया है। वाचिक के अन्तर्गत भरत ने भाषा ध्वनि उच्चारण। के नियम शब्द और पद-रचना सस्कृत और प्राकृत के पाठो मे अन्तर काकु छन्द-रचना के नियम पद और छन्दो क' सम्बन्ध छन्द और काव्य काव्यरचना के नियम काव्य के लक्षण काव्य के अलकार काव्य के गुण और दोष, ध्वनि

गण्ड-कर्म



क्षाम फुल्ल पूर्ण कम्पित



कुंचित सम

भ्रू-कर्म



उत्क्षेप



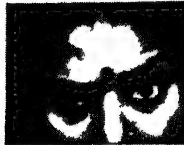
पातन



भ्रुकुटि



चतुर



कुंचित



रेचित



सहज

४१ मे 'जठर-कर्म' अर्थात् पेट के सचालन की ३ विधियो का विवेचन प्रस्तुत करता है। इन्हे वह १ - क्षाम २ - फुल्ल तथा ३ -पूर्ण कहता है।

अध्याय ८ के श्लाक सख्या १११ मे वह ९ प्रकार के 'पुट-कर्म' अर्थात् पलको की क्रियाओ का विवेचन करता है। इन्हे वह क्रमश १ उन्मेष २ - निमेष ३ - प्रसृत ४ - कुचित ५ - सम ६ - विवर्तित ७ स्फुरित ८ - पिहित तथा ९ - विताडित कहता है।

अध्याय ९ के श्लोक १४७ मे शास्त्रकार ने ६४ प्रकार के हस्तको कोचलाने की १९ विधियो का वर्णन किया है। इन्हे शास्त्र मे हस्त-प्रचार' कहा गया है। इनके नाम क्रमश - १ आकर्षण २ - विकर्षण ३ - व्याकर्षण ४ - परिग्रह ५ - निग्रह ६ - आवाहन ७ - तोदन ८ - सश्लेषण ९ - वियोग १० - रक्षण ११ - मोक्षण १२ - विक्षेपण १३ - विसर्ग १४ - तर्जन १५ - छेदन १६ - भेदन १७ - स्फोट १८ - मोटनतथा १९ - ताडन नाम बताए गए हैं। शास्त्राकार ने इन सब के अभिनय सम्बन्धी प्रयोगो पर विस्तार से प्रकाश डाला है। भरत के द्वारा केवल आगिक से सम्बन्धित क्रियाओ की सख्या २११ हो जाती है।

आगिक अभिनय के सन्दर्भ मे यह बात अब पूर्णत स्पष्ट हो जानी चाहिए कि भरत अभिनय के लिए जो शिक्षा देता है उसमे नृत्य भी सम्मिलित हैं। अत उसका प्रयोगकर्त्ता मात्र अभिनेता नही नर्तक भी है। इसीलिए वहप्रयोगज्ञअर्थात् प्रयोगकर्त्ता के लक्षण बताते हुए कहता है कि उसे गायन वादन नर्तन मे प्रवीण होना चाहिए। साथ ही उसे सारे नाटयाँगो का ज्ञाता होना चाहिए।

वाचिक अभिनय •

आगिक के बाद शास्त्र मे **वाचिक अभिनय** का विवेचन किया गया है। वाचिक के अन्तर्गत भरत ने भाषा ध्वनि, उच्चारण के नियम शब्द और पद-रचना सस्कृत और प्राकृत के पाठो मे अन्तर काकु छन्द-रचना के नियम पद और छन्दो का सम्बन्ध छन्द और काव्य काव्यरचना के नियम काव्य के लक्षण, काव्य के अलकार, काव्य के गुण और दोष ध्वनि

के प्रकार आदि का विस्तार से वर्णन किया है। यह भी बताया है कि नाटको का काव्य मृदु और ललित होना चाहिए उसमे गूढ अर्थ प्रयोग मे नही लाने चाहिए।

वाचिक अभिनय मे भरत सर्वप्रथम यह बताता है कि शरीर मे ध्वनि कहाँ से निकलती है। उसका कथन है कि वायु और अग्नि के घर्षण से ध्वनि उदभुत होती है। शरीर के अन्दर वायु रहती है। श्वाँस लेने के समय वायु का आवागमन चलता रहता है। किन्तु उस समय आवाज नही होती। जब शरीर के अवयवो मे निहित ऊर्जा किसी दिशा अर्थात् शरीर तन्त्र के किसी अवयव के कोण विशेष से घर्षण करना प्रारम्भ करती है अर्थात् अवयवो की शक्ति वायु से टकराती है तब आवाज निकलती है।

ध्वनि के प्रस्फुटित होने के समय **काकु** कार्य करते हैं और ध्वनि अपने प्रतीकात्मक रूप धारण करने लगती है। भरत के अनुसार ध्वनि निकलने के शरीर मे **वक्ष**, **कण्ठ** और **सिर** नामक ३ स्थान हैं। इनसे मन्द मध्य तथा उच्च ध्वनियाँ निकलती हैं।

ध्वनि को भरत नियमित विधान देते हुए उसका सम्बन्ध भाषा व्याकरण काव्य तथा उच्चारण आदि के नियमो से जोडता है। इतना ही नहीं वह ध्वनि से गान्धर्व अर्थात् सगीत का सम्बन्ध भी भली भाँति जानता है और उसे षडज ऋृषभ गान्धार मध्यम पचम धैवत तथा निषाद से जोडते हुए उसको दो ग्रामो मे नियोजित करता है।

भरत के वाचिक का विधान भी अत्यन्त विस्तृत है। उसकी पृष्ठभूमि मे सैकडो शताब्दियो के प्रयोग और चिन्तन का विकास दिखाई देता है। तभी वह ध्वनि से शब्द तक शब्द से छन्द तक और कथानक रचना तक पहुँचता है। वाचिक के क्रमिक विकास मे वह कथानक रचना तक पहुँचते-पहुँचते कथानक के भेद उसमे प्रयुक्त होने वाली अर्थ प्रकृतियो कार्य की अवस्थाये सन्धियाँ तथा सन्धियों के ६४ अंगो तक का बहुत सूक्ष्म विवेचन करता है उनके उच्चारण की विधियो पर प्रकाश डालते हुए उनकी शैलियो का स्वरूप स्पष्ट करता है। उत्तम मध्यम और अधम प्रकार के पात्रो द्वारा बोली जाने वाली अनेक प्रकार की भाषाओ की चर्चा करता है। उनके उच्चारण की विधियों पर प्रकाश डालते हुए उनकी

नामो की चर्चा प्रयोग के ११ तत्त्वो मे की जा चुकी है। इनके नाम भारती सात्वती कैशिकी और आरभटी हैं। लगता है वृत्तियो का नाटय से बहुत प्राचीन सम्बन्ध रहा है। वृत्तियो के माध्यम से प्रयोग के विभिन्न रूपो के व्यवहार मे आने वाली वाचन-शैली का सम्बन्ध शास्त्र मे बताया गया है। भारती वृत्ति का प्रयोग प्राय पुरुष किया करते हैं। ये शैली सस्कृत पाठ प्रधान है और भरत लोग इसका पहले से प्रयोग करके आ रहे हैं। अत इसे शास्त्रकार ने भारती वृत्ति कहा है।

वाचिक के अन्तर्गत शास्त्रकार छन्द-रचना की शिक्षा भी देना है। वह शास्त्र के बत्तीसवे अध्याय मे ११० प्रकार के छन्द बनाने की विधि बताना है।

वाचिक से सम्बन्धित भरत चार प्रकार की प्रवृत्तियो की चर्चा करता है। भरत सारे देश मे चार प्रवृत्तियो को प्रधानता देता है जिनके माध्यम से वह चारो क्षेत्र के निवासियो की भाषा आचरण एव व्यवहार का विवेचन करता है। इन्हे शास्त्र मे आवन्ती पाचाली औद्रमागधी तथा दक्षिणात्या कहा गया है।

वाचिक अभिनय का प्रत्येक शब्द भावो को जागृत करे इसलिए भरत काव्य की सुन्दरता बढाने वाले **काव्यालंकारो** पर भी प्रकार डालता है। वह काव्य की सुन्दरता के लिए उपमा दीपक रूपक और यमक नामक अलकारो की योजना करता है। शास्त्र के अध्याय १६ के श्लोक ४० में वह यह चर्चा प्रारम्भ करता है और आगे इन चार अलकारो के १५ भेद और कर देता है। **काव्य के ३६ लक्षणों** का विवेचन अध्याय १६ मे बहुत विस्तार से करते हुए वह इसी अध्याय के श्लोक ८७ मे पहले काव्य के दस **दोष** गिनाता है। इन्हे वह १ - गूढार्थ, २ - अर्थान्तर ३ - अर्थहीन ४ - भिन्नार्थ ५ - एकार्थ ६ - अमिलुप्तार्थ ७ - न्यायादपेत ८ - विषम ९ - विसन्धि तथा १० - शब्दच्युत कहता है।

इसी क्रम में वह श्लोक ९५ से काव्य के **१० गुण** बताना प्रारम्भ करता है। इन्हें वह १ - श्लेष २ - प्रसाद ३ - समता ४ - समाधि ५ - माधुर्य ६ - ओज ७ - सुकुमारता ८ - सार्थव्यक्ति ९ - उदारता तथा

के प्रकार आदि का विस्तार से वर्णन किया है। यह भी बताया है कि नाटको का काव्य मृदु और ललित होना चाहिए उसमे गूढ अर्थ प्रयोग मे नही लाने चाहिए।

वाचिक अभिनय मे भरत सर्वप्रथम यह बताता है कि शरीर मे ध्वनि कहाँ से निकलती है। उसका कथन है कि वायु और अग्नि के घर्षण से ध्वनि उदभुत होती है। शरीर के अन्दर वायु रहती है। श्वाँस लेने के समय वायु का आवागमन चलता रहता है। किन्तु उस समय आवाज नही होती। जब शरीर के अवयवो मे निहित ऊर्जा किसी दिशा अर्थात् शरीर तन्त्र के किसी अवयव के कोण विशेष से घर्षण करना प्रारम्भ करती है अर्थात् अवयवो की शक्ति वायु से टकराती है तब आवाज निकलती है।

ध्वनि के प्रस्फुटित होने के समय **काकु** कार्य करते हैं और ध्वनि अपने प्रतीकात्मक रूप धारण करने लगती है। भरत के अनुसार ध्वनि निकलने के शरीर मे **वक्ष**, **कण्ठ** और **सिर** नामक ३ स्थान हैं। इनसे मन्द मध्य तथा उच्च ध्वनियाँ निकलती हैं।

ध्वनि को भरत नियमित विधान देते हुए उसका सम्बन्ध भाषा व्याकरण काव्य तथा उच्चारण आदि के नियमो से जोडता है। इतना ही नही वह ध्वनि से गान्धर्व अर्थात् सगीत का सम्बन्ध भी भली भाँति जानता है और उसे षडज ऋषभ गान्धार मध्यम पचम धैवत तथा निषाद से जोडते हुए उसको दो ग्रामो मे नियोजित करता है।

भरत के वाचिक का विधान भी अत्यन्त विस्तृत है। उसकी पृष्ठभूमि मे सैकडो शताब्दियो के प्रयोग और चिन्तन का विकास दिखाई देता है। तभी वह ध्वनि से शब्द तक शब्द से छन्द तक और कथानक रचना तक पहुँचता है। वाचिक के क्रमिक विकास मे वह कथानक रचना तक पहुँचते-पहुँचते कथानक के भेद उसमे प्रयुक्त होने वाली अर्थ प्रकृतियो कार्य की अवस्थाये सन्धियाँ तथा सन्धियो के ६४ अंगों तक का बहुत सूक्ष्म विवेचन करता है उनके उच्चारण की विधियो पर प्रकाश डालते हुए उनकी शैलियो का स्वरूप स्पष्ट करता है। उत्तम मध्यम और अधम प्रकार के पात्रो द्वारा बोली जाने वाली अनेक प्रकार की भाषाओ की चर्चा करता है। उनके उच्चारण की विधियों पर प्रकाश डालते हुए उनकी

शैलियो का स्वरूप स्पष्ट करता है। उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार के पात्रो द्वारा किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए इसका भी विशद निर्देश देता है।

वह वाचिक के अन्तर्गत प्रयोगकर्त्ता को समस्त प्रकार के विधि सम्मत निर्देश देने के बावजूद यह भी स्पष्ट कर देता है कि मात्र इन बातो की शिक्षा प्राप्त करने से ही लक्ष्य की प्राप्ति नही हो जाती। इस शिक्षा के बाद प्रयोगकर्त्ता के कण्ठ मे ६ गुण दिखायी देने चाहिए। इन्हे वह १ - श्रावक २ - घनत्व ३ - स्निग्ध ४ - मधुर ५ - अवधान तथा ६ - त्रिस्थानशोभित कहता है। जैसे श्रावक का अर्थ है जिसकी आवाज दूर से भी साफ सुनायी दे। घनत्व का अर्थ है कि ऊँचे स्वर पर भी जिसकी आवाज न भर्राये। अवधान का अर्थ है कि पाठ तेजी से पढे या रुक-रुक कर शब्दो की स्पष्टता बनी रहे। त्रिस्थानशोभित का अर्थ है कि सिर कण्ठ या वक्ष कही से भी आवाज निकाले ध्वनि मे माधुर्य बना रहे।

वह सर्वप्रथम यह स्प्ष्ट कर देता है कि उच्चारण के ८ स्थल हैं। अध्याय १४ के श्लोक ११ से वह यह प्रसग प्रारम्भ करके बताता है कि १ - उर २ - कण्ठ ३ - सिर ४ - जिह्वामूल ५ - दन्त ६ - नासिका, ७ - ओष्ठ तथा ८ - तालु नामक उपादानो से ध्वनि निकलती है।

भरत शब्द को **वर्ण** कहता है और शास्त्र के अध्याय १७ के श्लोक १०९ मे उदात्त अनुदात्त स्वरित और कम्पित नामक वर्ण की चार प्रकार की ध्वनियाँ निर्धारित करता है। अध्याय १४ के श्लोक ११ में **घोष** और **अघोष** नामक दो प्रकार की ध्वनियों के भेद बताता है। घोष नामक ध्वनि में गुजन अधिक होता है अघोष मे गुजन की अपेक्षा तीखापन अधिक होता है।

प्रयोग मे विभिन्न प्रकार के पात्र कार्य करते हैं। इन पात्रो के लिए उस काल मे मूलत दो प्रकार की भाषाओ का विधान किया गया था। एक **संस्कृत** तथा दूसरी **प्राकृत**। उत्तम श्रेणी के पात्रों द्वारा सस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। सेवक दासियाँ तथा अधम कोटि के पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। शास्त्र के अध्याय १४ में संस्कृत और प्राकृत भाषा का विधान करके भरत अन्य पात्रों के प्रयोग हेतु भाषा मे विविधता लाने के ध्येय से अध्याय १७ के श्लोक ३० में अतिभाषा

आर्यभाषा जाति भाषा तथा योन्यन्तरी नामक चार भाषाओ के उच्चारण की प्रवृत्ति की चर्चा भी करता है।

वर्ण अर्थात् अक्षरो के सयोग से **पद** अर्थात् शब्दो की रचना होती है। भरत शास्त्र के अध्याय १४ के श्लोक ३९ मे पहले **चूर्णपद** और **निबद्धपद** नामक पदो के दो भेद करता है। वह कहता है कि सामान्य अर्थ वाला शब्द निबद्धपद कहलाता है और जिस शब्द से व्यजना का विस्तार हो वह चूर्ण पद कहलाता है।

इसी अध्याय के श्लोक २५ से शास्त्रकार पद क तत्त्वो का विवेचन प्रारम्भ करता है। पद के १२ तत्त्व निर्धारित करते हुए वह १ - स्वर २ - व्यजन ३ - वर्ण ४ - सन्धि ५ - विभक्ति ६ - नाम ७ - आख्यात ८ - उपसर्ग ९ - निपात १० - तद्धित ११ - समास तथा १२ - प्रत्यय की व्याख्या करता है। इन तत्त्वो का शास्त्र मे विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। पश्चात् शास्त्रकार श्लोक ४६ से एक अक्षर से २६ अक्षरो द्वारा बनाये जाने वाले पदो की व्याख्या करता है। जैसे एक अक्षर वाला पद 'उक्त' कहलाता है दो अक्षर वाला '**अत्युक्त**' तीन अक्षर का '**मध्य**' चार अक्षर का '**प्रतिष्ठा**' पाँच का '**सुप्रतिष्ठा**' छ अक्षर का '**गायत्री**' सात का '**उष्णिक**' आठ का '**अनुष्टुप**' इसी क्रम मे भरत २६ अक्षर के पद तक की व्याख्या करता है।

अध्याय १७ के श्लोक ५९ से वह पात्रो को स्पष्ट करता है कि देश के विभिन्न क्षेत्रो की भाषाओ के उच्चारण मे वहाँ की क्षेत्रीय ध्वनियो का प्रभाव मिश्रित रहता है। पात्र जिस क्षेत्र का हो उसे अपने उच्चारण मे इन ध्वनियो को मिश्रित कर लेना चाहिए। क्षेत्रीय प्रभावो के लिए भरत कहता है कि भाषाएँ **एकारबहुला**, **नकारबहुला**, **चकारबहुला** **उकारबहुला** तथा **ओकारबहुला** हुआ करती हैं।

उच्चारण ध्वनि तथा पद-रचना के साथ-साथ वह उच्चारण को सयमित बनाने के लिए षडज ऋषभ गान्धार मध्यम पचम धैवत तथा निषाद नामक सात स्वरो की योजना करता है।

इसी सन्दर्भ मे भरत चार प्रकार की वृत्तियो की चर्चा करता है। इनके

नामो की चर्चा प्रयोग के ११ नत्वो मे की जा चुकी है। इनके नाम भारती सात्वती कैशिकी और आरभटी है। लगता है वृत्तियो का नाटय से बहुत प्राचीन सम्बन्ध रहा है। वृत्तियो के माध्यम से प्रयोग के विभिन्न रूपो के व्यवहार मे आने वाली वाचन-शैली का सम्बन्ध शास्त्र मे बताया गया है। भारती वृत्ति का प्रयोग प्राय पुरुष किया करते हैं। ये शैली सस्कृत पाठ प्रधान है और भरत लोग इसका पहले से प्रयोग करके आ रहे हैं। अत इसे शास्त्रकार ने भारती वृत्ति कहा है।

वाचिक के अन्तर्गत शास्त्रकार छन्द-रचना की शिक्षा भी देना है। वह शास्त्र के बत्तीसवे अध्याय मे ११० प्रकार के छन्द बनाने की विधि बताना है।

वाचिक से सम्बन्धित भरत चार प्रकार की प्रवृत्तियो की चर्चा करता है। भरत सारे देश मे चार प्रवृत्तियो को प्रधानता देता है जिनके माध्यम से वह चारो क्षेत्र के निवासियो की भाषा आचरण एव व्यवहार का विवेचन करता है। इन्हे शास्त्र मे आवन्ती पाचाली औद्रमागधी तथा दक्षिणात्या कहा गया है।

वाचिक अभिनय का प्रत्येक शब्द भावो को जागृत करे इसलिए भरत काव्य की सुन्दरता बढाने वाले **काव्यालंकारो** पर भी प्रकार डालता है। वह काव्य की सुन्दरता के लिए उपमा दीपक रूपक और यमक नामक अलकारो की योजना करता है। शास्त्र के अध्याय १६ के श्लोक ४० मे वह यह चर्चा प्रारम्भ करता है और आगे इन चार अलकारो के १५ भेद और कर देता है। **काव्य के ३६ लक्षणों** का विवेचन अध्याय १६ मे बहुत विस्तार से करते हुए वह इसी अध्याय के श्लोक ८७ मे पहले काव्य के दस **दोष** गिनाता है। इन्हे वह १ - गूढ़ार्थ २ - अर्थान्तर ३ - अर्थहीन ४ - भिन्नार्थ ५ - एकार्थ ६ - अभिलुप्तार्थ ७ - न्यायादपेत ८ - विषम ९ - विसन्धि तथा १० - शब्दच्युत कहता है।

इसी क्रम मे वह श्लोक ९५ से काव्य के **१० गुण** बताना प्रारम्भ करता है। इन्हें वह १ - श्लेष २ - प्रसाद ३ - समता ४ - समाधि ५ - माधुर्य ६ - ओज ७ - सुकुमारता ८ - सार्थव्यक्ति ९ - उदारता तथा

१० कान्ति कहता है। वह १८ प्रकार के छन्द गीतो का विधान करता है ६५ प्रकार के छन्द वृत्त समझाता है और ७ प्रकार के छन्दाक्षरो की चर्चा करता है।

आगे वह ऐसा प्रसग लेता है जिसका सम्बन्ध प्रयोगज्ञ तथा कथानक लेखक दोनो से है। वह इस प्रसग मे कथानक के भेद उनकी रचना का विधान तथा उस विधान के अगोपागो का विस्तार से वर्णन करता है। वह कहता है कि कथानक **आधिकारिक** और **प्रासंगिक** दो प्रकार का होता है। उसमे पाँच सन्धियाँ पाँच कार्यावस्थाएँ तथा पाँच अर्थ प्रकृत्तियाँ होती हैं। सन्धियो के ६४ **अंग** और २१ **सन्ध्यान्तर** होते हैं। वाचिक के प्रत्येक अग की यदि गणना करें तो ये ४५५ से भी अधिक हैं जिन पर भरत ने बारीकी से चिन्तन मनन प्रस्तुत किया है। उसका वाचिक **इन्टोनेशन**, **मोड्यूलेशन**, **टोन**, **पिच**, **प्रोजेक्शन** तथा **रेंडरिंग** तक सीमित नही उसका वाचिक आधुनिक फोनोटिक्स लिँग्विस्टिक्स फिलोलोजी सिमेन्टिक्स म्यूजिक आदि से भी आगे बढा हुआ शास्त्र है।

आहार्य •

आहार्य अभिनय का तीसरा प्रकार है। शास्त्र में इसकी चर्चा इक्कीसवे अध्याय से प्रारम्भ होती है। पात्रों की साज-सज्जा से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष का इसमें विशद वर्णन किया गया है। इसे शास्त्र में कई स्थानो पर नेपथ्य भी कहा गया है। पात्रो की साज-सज्जा का सारा काम नेपथ्य में होता है तथा मच पर कृत्रिम हाथी घोडे ऊँट आदि दिखाने वाली वस्तुएँ भी नेपथ्य मे रखी जाती हैं। अत इसके लिए नेपथ्य शब्द उचित ही है।

आहार्य अभिनय के 'नाट्यशास्त्र' मे प्रारम्भ में चार भेद किए गए हैं। इन्हे क्रमश **पुस्त**, **अलंकार**, **अंगरचना** तथा **सज्जीव** कहा गया है। पुस्त के सम्बन्ध में भरत अध्याय २१ के श्लोक ६ में कहता है कि हाथी विमान पर्वत यान आदि के मंच पर कृत्रिम रूप दिखाये जाते हैं अत इसे पुस्त कहा जाता है।

पुस्त तीन प्रकार के कहे गए हैं - **सन्धिम**, **व्यंजिम** और **वेष्टिम**

संधिम पुस्त को स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार का कथन है कि जो भी मच के उपकरण या सामग्री सरकण्डे चमडे तथा कपडो से बनायी जाएँ उसे सधिमपुस्त कहा जाता है। मच के जो प्रसाधन यन्त्रो के द्वारा बनाए जाएँ उन्हे **व्यंजिम पुस्त** कहा जाता है।लपेट-लपेट कर बनाये जाने वाले समस्त मच उपकरण **वेष्टिम पुस्त** कहलाते हैं। इसी प्रसग मे वह आगे वेष्टिम पुस्तो के **१ -वेष्टिम**, **२ - वितत् ३ - संघात्य**, **४ - ग्रन्थिम** और **प्रालम्बित** नामक ५ भेद कर देता है। इनमे सम्बन्धित अनेक प्रकार की वस्तुओ को बनाने की विधि का भरत समझाकर वर्णन करता है।

अलकार के अन्तर्गत वह स्त्री और पुरुष पात्रों द्वारा धारण किए जाने वाले अनेक प्रकार के आभूषणो की चर्चा करता है। राजा को रानी को मन्त्री को राजकुमार को देवताओ को दानवो को किस प्रकार के आभूषण पहनने चाहिए आदि-आदि। प्रयोग मे चूँकि लोकव्यापी हर प्रकार के अच्छे-बुरे पात्र दिखाये जाते हैं अत उनके रग-रूप पहनावा वस्त्र आदि किस प्रकार दिखाने चाहिए।

अलकारों के सम्बन्ध मे चर्चा करते समय सबसे पहले वह बताता है कि पात्र की साज-सज्जा के लिए ४ प्रकार के आभूषण हुआ करते हैं। अध्याय २१ के श्लोक ११ मे वह इनका विवरण देते हुए इन्हे १ - **आवेध्य**, २ - **बन्धनीय**, ३ - **क्षेप्य** तथा ४ - **आरोप्य** नाम देता है।

आवेध्य नामक आभूषण वे कहलाते हैं जो खाल का वेधन करके धारण किए जाते हैं। अर्थात् कान के कुण्डल, झुमके नाक की नथ बुलाख आदि। ये छेद मे डालकर पहने जाते हैं। अत आवेध्य श्रेणी के आभूषण कहे जाते हैं।

बन्धनीय आभूषण वह कहलाते हैं जिन्हे बाँध कर पहना जाता है जैसे भुजबन्ध कवच कर्धनी पायल आदि। क्षेप्य नामक आभूषण वह कहलाते हैं जिन्हे पहनाकर दबा दिया जाता है जैसे पाँव के नूपुर अ़नवट मुद्रिकाएँ आरसी कंगन कडे तथा सिर के झुमके टीका आदि और आरोप्य अलकार वे कहलाते हैं जिनका ऊपर से आरोपण किया जाता

है जैसे हार माला एकावली सिर की किरीट मुकुट यज्ञोपवती आदि। भरत विभिन्न प्रकार के आभूषणो के नाम शास्त्र मे गिनाता है और साथ ही यह भी निर्देश देता है कि प्रयोग मे सदैव कृत्रिम और हलके अलकारो का प्रयोग करना चाहिए। कही ऐसा न हो कि भारी जेवर पहनने से पात्र थकान का अनुभव करे और मूर्च्छित होकर मच पर गिर जाये। आभूषण लाख चपडा कागज हल्की धातु आदि के बनाने चाहिए नगो के लिए अभ्रक का प्रयोग करना चाहिए। अभ्रक के पीछे लाल हरा पीला रग लगा देना चाहिए।

इसके बाद शास्त्रकार अगरचना अर्थात मुखसज्जा को लेता है जिसे आजकल **मेकअप** कहा जाता है। भरत इस विषय के अन्तर्गत मुख-सज्जा से सम्बन्धित भारत के विभिन्न भागो मे रहने वाले भिन्न-भिन्न प्राणियो के रगो की चर्चा करता है। उनके वर्ण दिखाने के लिए रगो को बनान की विधि पर विस्तार से प्रकाश डालता है। वह कहता है कि मूल रग पीला लाल नीला तथा सफेद होते हैं। इनको मिलाकर तरह-तरह के रग बन जाते हैं। रगो के मिलान का अनुपात भी वह बताना है कि अमुक रग बनाने के लिए एक भाग अमुक रग दो भाग अमुक रग मिलाने चाहिए। अनुपात कम ज्यादा करके वर्ण उपवर्ण और अपवर्ण बनाये जा सकते हैं। गौरवर्ण दिखाने के लिए रग अमुक विधि से बनाया जाना चाहिए श्याम वर्ण के लिए अमुक विधि से बनाया जाना चाहिए। भारतीय खनिज और वनस्पतियो से वह हरा पीला नीला लाल भूरा काला कत्थई बैगनी गुलाबी आदि सारे रग बनाने की विधियाँ स्पष्ट करता है। वह बताता है कि पाँचाल क्षेत्र के पात्रो का वर्ण ऐसा तथा द्रविड कोसल व आवन्ती के लोगो का वर्ण ऐसा दिखाना चाहिए।

अग-रचना मे पात्रों के वर्ण निश्चित करने के बाद वह पात्रों के मूँछ-दाढी लगाने की चर्चा करता है। वह कहता है कि बाल चार प्रकार के होते हैं। इन्हे वह क्रमश श्याम अर्थात् काले श्वेत अर्थात् सफेद मिश्र अर्थात् काले-सफेद मिश्रित तथा रोमश अर्थात् भूरे कहता है। इनसे पात्रों के मूँछ और दाढी व सिर के बाल बनाने-लगाने की विधि बताता है।

पात्रो के माथे पर विभिन्न प्रकार के तिलक लगाने की विधियो पर भरत विस्तार से प्रकाश डालता है। अंग-रचना के अन्तर्गत नेत्रों की सज्जा के निर्देश देता है दाँतो की सज्जा की विधियाँ बताता है। कपोलो की सज्जा के लिए '**पत्र-लेखा**' की योजना करता है। साथ ही भृकुटियो के ऊपर छोटे पुष्प और पत्तियाँ काढकर '**भ्रू-गुच्छ**' बनाने की विधियाँ बताता है।

इसके पश्चात् अध्याय २१ के श्लोक सख्या १२२ मे वह पात्रो की **वस्त्र-सज्जा** का विवेचन करता है। वस्त्रो के वह तीन भेद करता है और इन्हे क्रमश १ - शुद्ध २ - विचित्र और ३ - मलिन नामक तीन श्रेणियो मे विभाजित कर देता है। शुद्ध वस्त्रो के अन्तर्गत वह साधु सन्यासी ऋषि तथा मुनियो के वस्त्रो की गणना करता है। विचित्र के अन्तर्गत रगीन और तडक-भडक वाले कपडो की गणना करता है। मलिन के अन्तर्गत दीन-दुखी याचक सेवक, छोटे स्तर के पात्रो के साथ-साथ विरहनी-नायिका आदि को रखता है।

आहार्य अभिनय के वर्णन मे भरत पात्रो के **मुकुट** आदि को भी विस्मृत नही करता। वह तीन प्रकार के मुकुट बताता है। इन्हे वह १ - किरीटन २ - मस्तकिन, तथा ३ - पार्श्वगत कहता है। जो मुख्यमुकुट मे छोटे-छोटे मुकुट जोडे जायें अथवा साधारण पात्रो के सिर पर छोटे मुकुट लगाये जायें वे किरीटन कहलाते हैं। मस्तकिन नामक मुकुट माथे पर टिकाकर पहनाये जाते हैं तथा पार्श्वगत सिर के पीछे के अथवा बगल के भाग में पहनाए जाते हैं।

आहार्य अभिनय के पुस्त अलकार तथा अंग-रचना के बाद भरत **सज्जीव** नामक चौथे भेद का विवेचन प्रस्तुत करता है। सज्जीव के सम्बन्ध मे शास्त्र के अध्याय २१ के श्लोक ४ मे शास्त्रकार का कथन है कि मच पर चार पाँव वाले पशु, आकाश मे उडने वाले पक्षी प्रकृति की बहुत सी जड वस्तुएँ अर्थात् वृक्ष आदि पात्र के रूप मे दिखाने पडते हैं। उन्हे सदैव सज्जीव के माध्यम से दिखाना चाहिए। चतुष्पद अर्थात् पशु दिखाने के लिए पात्र को उस पशु का मुखौटा लगाकर उसी के अनुसार वस्त्र और आकार ग्रहण करना चाहिए। एक पात्र को साथ लेकर ऐसा रूप बनाना चाहिए कि मच पर उस पशु का आकर साकार होने लगे। ऊपर से कुछ वस्त्र आदि

ढक लेना चाहिए। पक्षियो के पात्र भी इसी विधि से बनाने चाहिए। पेड का पात्र दिखाने के लिए पात्र को सारे शरीर को कपडे से ढक कर तना जैसा बना लेना चाहिए। ऊपर पत्तो का छोटा सा झुरमुट लगा लेना चाहिए-आदि-आदि।

पात्रो को प्रयत्नपूर्वक उसी प्रकार की चाल का या उडने जैसा चलने का अभ्यास करना चाहिए। पक्षियो व पशुओ की भूमिका करते समय उनके मुखौटे मुँह पर लगा लेने चाहिए। मुखौटे बनाने की विधि का निर्देश भी शास्त्र मे विस्तार से दिया गया है। मुखौटे के लिए शास्त्र मे **घटी** शब्द का प्रयोग किया गया है और उनके बनाने के लिए अगुल का माप निर्धारित किया गया है। अमुक मुखौटा इतने अगुल चौडा और इतने अगुल लम्बा रखना चाहिए। इतने अगुल माथा छोडकर किसी पैनी वस्तु से आँखो के छेद इतने अगुल की दूरी पर करने चाहिए-आदि-आदि।

पर्वत नदी रथ विमान सागर आदि निर्जीव वस्तूओ का मानवीकरण करके उन्हे भी प्रतीक रूप मे मच पर प्रस्तुत करने के शास्त्र मे विशद निर्देश दिए गए हैं। भरत स्वय कहता है कि मच पर हाथी घोडे विमान तथा नदी पर्वत सागर यान वृक्ष आदि प्रत्यक्ष प्रदर्शित नही किए जा सकते। इसलिए इनके प्रतीक बनाकर इन्हे मच पर प्रस्तुत करना चाहिए। सज्जीव के अन्तर्गत ये समस्त विधान सरलता से दिखाये जा सकते हैं।

आहार्य अभिनय के अन्तर्गत वह बारीक से बारीक बातो का वर्णन करता है। यहाँ सक्षेप मे उनकी चर्चा भर की जा रही है। यदि पूरे विवरण को ले तो प्रत्येक पक्ष पर एक विशाल ग्रन्थ की अलग से रचना की जा सकती है। उसने तो यहाँ तक लिखा है कि किन-किन पात्रो के बैठने के लिए किस प्रकार के आसनो अथवा सिंहासनो या चौकियो का प्रयोग करना चाहिए। जैसे वेत्रासन दण्डासन स्वर्णासन रौप्यासन काष्ठासन मसूरकआसन आदि। राजा के अमुक मन्त्री के लिए अमुक राजकुमार के लिए अमुक पुरोहित के लिए अमुक वेश्या के लिए अमुक अतिथि के लिए अमुक आसन का प्रयोग करना चाहिए।

सात्त्विक अभिनय •

अभिनय के चार भेदो मे सात्त्विक अभिनय भरत की दृष्टि मे बहुत महत्वपूर्ण ही नही करने मे बहुत कठिन भी है। अभिनय के आगिक वाचिक और आहार्य का सम्बन्ध बाहरी वस्तुओ से है लेकिन सात्त्विक का सम्बन्ध सूक्ष्म मनोभावो से है। मन का सम्बन्ध नाना प्रकार के स्त्री-पुरुषो के स्वभाव प्रकृति और आदतो से है। अत अन्दर की बात व्यक्त करना बहुत जटिल क्रिया है। ससार के जीवो के मन मे सुबह से शाम तक हजारो प्रकार के भाव उठते रहते हैं मनुष्य मन ही मन न जाने क्या-क्या सोचता रहता है। उसके अन्दर के भावो को अभिनय मे शास्त्रबद्ध करना नियम और विधियो मे बाँधना सचमुच बहुत कठिन काम है।

इतना जटिल होते हुए भी भरत अध्याय २२ मे प्रयोगकर्त्ताओ को यह चेतावनी दे देता है कि सत्त्वयुक्त अभिनय ही श्रेष्ठ कोटि का हाता है। जिस अभिनय मे सत्त्व का प्रयोग कुछ कम हो जाता है वह मध्यम कोटि का होता है और जिसमे सत्त्व का योग न हो वह अभिनय अधम कोटि का होता है।

प्रश्न यह है कि सत्त्व अर्थात् मन जब अव्यक्त है दिखाई देने वाली वस्तु नही तब उसका दृश्यशील अभिनय में प्रयोग कैसे किया जावे? भरत के चिन्तन की गहराई इससे पता लगती है कि वह इस रहस्य को खोलते हुए कहता है कि हर व्यक्ति के मन मे सत्त्व सदैव स्थित रहता है। पराये पात्र या वस्तु की कल्पना करते ही सत्त्व से भाव उत्पन्न होते हैं। जिस पात्र की भूमिका करनी होती है उसकी कल्पना करते ही भाव से हाव उत्पन्न होने लगते हैं। और आगे जाकर हाव से हेला। मनुष्य के हृदय में रहने वाले भाव असख्य होते हैं किन्तु अभिनय में केवल ४९ भावों के द्वारा मन की हर बात को सरलता से व्यक्त किया जा सकता है। इन भावों में ८ स्थायी भाव ३३ संचारी या व्यभिचारी भाव तथा ८ सात्त्विक भाव प्रधान हैं। इनके संयोग से मुखज अभिनय में लगभग २१६ मुद्राएँ बन जाती हैं जो मानव की प्रत्येक मन स्थिति या मनोदशा को साकार कर सकती हैं। भरत की यह अत्यन्त सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक उपलब्धि है जो शाश्वत तो है ही देश

काल के बन्धनो से भी मुक्त है। हर युग मे हर देश मे इनका सदैव यही रूप बना है और बना रहेगा।

भरत सात्विक अभिनय के अन्तर्गत उससे सम्बन्धित व्यक्त होने वाले भावों का विधान एक-एक करके प्रयोगज्ञो को समझाता है। भरत की यह विशेषता है कि वह जिस विषय को लेता है उसका हर दृष्टि से ऐसा क्रमबद्ध विवेचन करता है कि उससे कुछ छूट नही पाता।

भरत इस प्रसग मे **सामान्य अभिनय, चित्राभिनय, सुकुमार अभिनय, आविद्ध-अभिनय, स्त्रियों के शील** तथा **पात्र-प्रकृति** नामक शीर्षक निर्धारित करता है। इस प्रसग मे यह समझना आवश्यक है कि जिसे भरत ने सामान्य अभिनय कहा है वह नाम से लगता है कि कोई बहुत सामान्य बात होगी किन्तु जब वह उस विषय का विवेचन करता है तब पता लगता है कि वह असाधारण और विशेष प्रकार का अभिनय है।

सामान्य अभिनय के भरत अभिनय अलकारो के आधार पर तीन भेद करता है। इन्हे शास्त्र के अध्याय २२ श्लोक सख्या ५ मे **अगज अयत्नज** तथा **स्वाभाविक** कहता है। इन तीन रूपो को वह अभिनय का अलकार कहता है। इनके प्रयोग से अभिनय उच्चकोटि का तथा प्रभावशाली बन जाता है। अभिनय को चमत्कृत करने वाले अलकारो का सम्बन्ध बाह्य और आभ्यतर दोनो रूपो से है क्योंकि जो कुछ आन्तरिक भाव से उत्पन्न होकर व्यक्त होगा वह पात्र के शरीर द्वारा साकार होगा। अत भरत सामान्य अभिनय के प्रारम्भ में ही बाह्य और आभ्यतर दो भेद स्थापित कर देता है। दोनो का अन्तर स्पष्ट करते हुए वह कहता है कि भूमिका करने वालों के शरीर और आकृति मे अन्तर रहता है। भूमिका करते समय अभिनय के जिस अलकार का प्रयोग कोई पात्र दाँयी ओर मुख करके करे उसी का प्रयोग दूसरा पात्र बाँये मुख खडा होकर कर सकता है कोई बैठकर कर सकता है कोई सीधा खडे होकर कर सकता है। अत पात्र के शरीर से सम्बन्धित होने के कारण वह इन्हे अभिनय के **अंगज** अलंकार कहता है। इनकी सख्या भरत ने छ बताई है। इनके नाम १ वाक्य २ - सूच्य ३ - अंकुर ४ - शाखा ५ - नाट्यायित तथा ६ निवृत्यंकुर रखे गये हैं।

इसी प्रसग मे वह आगे **अयत्नज** अलकारो की चर्चा करता है। इनके सम्बन्ध मे भरत कहता है कि पात्र जब मनोयोग के साथ अभिनय करता है तब ये अभिनय अलकार पात्र के मुख पर बिना प्रयत्न किए दिखाई देने लगते हैं। इसीलिए इन्हे अयत्नज कहा गया है। ये अलकार स्त्री और पुरुष दोनो के अभिनय मे दिखाई देते हैं। अयत्नज अभिनय के अलकारो मे भरत स्त्रियो के ७ तथा पुरुषो के ८ अलकार बताता है।

स्त्रियों के **सात अयत्नज अलंकारों** के नाम शास्त्र में इस प्रकार दिए गए हैं। १ - शोभा २ - कान्ति ३ - दीप्ति ४ - माधुर्य ५ - धैर्य ६ - प्रगल्भ तथा ७ - औदार्य। पुरुषों के आठ अयत्नज अलकारो के नाम इस प्रकार हैं। १ - शोभा २ - विलास ३ - माधुर्य ४ - स्थैर्य ५ - गाम्भीर्य ६ - ललित ७ - औदार्य और ८ - तेज। आज के युग मे हम अभिनेता के 'स्टिल' खीचने के समय उसकी 'ऐन्ट्री' के समय उठने और बैठने के समय 'लुक' के समय कहते हैं थोडा प्रेस लाइये कुछ डल हो रहा है। थोडा एक्सप्रेशन ब्राइट कीजिए थोडा एक्शन मे रिदम और लाइये आदि-आदि। भरत ने इन सारी क्रियाओं को नाम देकर इन्हें बनाने के लिए विधान तैयार कर दिया था।

उसने स्त्रियों और पुरुषो के अयत्नज अलकारो मे पुरुष के दूसरे अलकार को बदला। स्त्री का दूसरा अलकार कान्ति अर्थात् चेहरे पर चमकती आँखे थीं मुख पर हल्की मुस्कराहट की रेखा थी। इसी के विपरीत पुरुष के दूसरे अलकार विलास में पुरुष की भोगमूलक वृत्ति का प्रदर्शन था अर्थात् संसार की समस्त वस्तुओं के भोग का उत्साह। स्त्री का तीसरा अलकार दीप्ति अर्थात् चेहरे का दमदमाना है तो पुरुष का माधुर्य अर्थात् चेहरे पर मधुरता स्त्री का ५ वाँ अलंकार धैर्य अर्थात् धीरज है तो पुरुष का गम्भीरता। पुरुष में एक अलकार तेज अधिक है। सच्चे साहसी और गुणवान व्यक्ति के मुख पर तेज दिखाई देना ही चाहिए। इसी के विपरीत स्त्री के मुख पर उदारता और सुन्दरता खेलती रहनी चाहिए।

इसके पश्चात् शास्त्रकार **स्वाभाविक** अलंकारों की चर्चा करता है। इनके सम्बन्ध में वह स्पष्ट कर देता है कि इनका मूल सम्बन्ध स्त्रियों के मनोभावों से है। प्रत्येक नायिका जो अपने प्रेमी से प्रेम करती है उसकी

मनोदशा के ये रूप बहुत ही स्वाभाविक हैं।

भरत स्त्रियों के स्वभाव से सम्बन्धित दस **स्वाभाविक अलंकारो** की चर्चा करता है। इनके नाम वह इस प्रकार बताता है १ - लीला २ - विलास ३ - विच्छिति ४ - विभ्रम ५ - किलकिंचित ६ - मोट्टायित ७ - कुट्टमित ८ - बिब्बोक ९ - ललित १० - विहृत। इनके लक्षण स्पष्ट करते हुए भरत कहता है कि जब कोई प्रेमिका मन मे प्रेम का भाव लिए मधुर वाणी मे सजधज कर अपने प्रेमी की क्रियाओ की नकल करती है वह लीला कहलाता है। जब नायिका प्रेमी को देखकर इठलाती चाल चलती है रूठने का झूठा अभिनय करती है वह विलास कहलाता है। प्रेमिका के वस्त्र मालायें तथा आभूषणो के अस्त-व्यस्त हो जाने पर नायिका की वह छटा विच्छिति कहलाती है। जब प्रेमी के प्रति मन मे शका उत्पन्न हो जाये और भ्रमवश प्रेमिका की बोली शरीर की चेष्टाए कभी वासना और कभी हर्ष उत्पन्न करने लगे वह दशा विभ्रम कहलाती है। जब अधिक प्रसन्नता के कारण प्रेमिका के मुख पर कभी मुस्कान कभी रुदन कभी गर्व कभी हास्य और कभी भय छलकने लगे वह अलकार किलकिंचित कहलाता है। जब प्रेमी के प्रसगों को सुनकर प्रेमिका उछलने लगे उसके शरीर के अग फडकने लगें स्त्रियो का वह अलकार मोट्टायित कहलाता है। इसी प्रकार अन्य अलकारों में प्रेमिका की विभिन्न मनोदशाओं का वर्णन भरत ने किया है।

सुकुमार अभिनय की योजना विशेष रूप से स्त्रियों के स्वभाव एव उनकी प्रकृति से सम्बन्धित है। शास्त्रकार ने स्त्रियों की भिन्न-भिन्न आदतों को ध्यान में रखते हुए उनके स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसे वह **स्त्रियों के शील** की संज्ञा देता है। स्त्रियों के २२ प्रकार के शीलों की चर्चा भरत ने शास्त्र के अध्याय २२ के श्लोक संख्या ९२ से प्रारम्भ की है। इन २२ शीलों के माध्यम से भरत ने स्त्रियों के स्वभाव, प्रकृति तथा चारित्रिक लक्षणों को स्पष्ट करने के लिए ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनसे पाठक की कल्पना तुरन्त साकार हो उठती है। वह २२ शीलों के नाम इस प्रकार बताता है - १- देव २ - दानव ३ - गान्धर्व, ४ - राक्षस ५ - नाग, ६ - पक्षी ७ - पिशाच ८ - यक्ष, ९ - सिंह, १० - पुरुष, ११ - वानर,

१२ - हाथी १३ - मृग १४ - मछली १५ - ऊँट १६ - मकर १७ - गधा १८ - सूकर १९ - घोडा २० - भैंस २१ - बकरी और २२ - गऊ।

भरत का भाव स्पष्ट करने के लिए इनमे से कुछ **शीलो के लक्षण** स्पष्ट किए जा रहे हैं। पूरे २२ के लक्षण दे तो विषय का बहुत विस्तार हो जाएगा।

देव नामक शील वाली स्त्री के लक्षण स्पष्ट करते हुए भरत कहता है कि देव जैस शील रखने वाली स्त्री कोमलागी होती है। उसकी दृष्टि स्थिर तथा विनम्र होती हैं। वह रति के लिए मध्यम भाव रखती है स्वल्प आहार ग्रहण करती है सुन्दर गन्धो और पुष्पो को प्यार करती है। साथ ही गायन-वादन उसे प्रिय होते हैं।

दानवशीला स्त्री अधर्म पर चलने वाली सदा क्रोध करने वाली हृदय की कठोर मदिरा और माँस की प्रेमी अभिमान करने वाली अस्थिर तथा क्रूर स्वभाव वाली होती है। **बकरीशीला** स्त्री के सम्बन्ध मे भरत कहता है कि जिस स्त्री का शरीर पतला हो तथा हाथ पैर पतले हो जिसकी आँखे ललाई लिए हों शरीर पर छोटे रोये हो डरपोक और कमजोर हो तैरना जिसे पसन्द हो और जिसे वनों में घूमना पसन्द हो चचल चपल तेज चलने वाली हो ऐसी स्त्री को बकरी शीला समझना चाहिए। **गऊशीला** स्त्री के सम्बन्ध में भरत कहता है कि जिस स्त्री के कूल्हे भारी और उठे हुए हो, जाघें पतली हों स्वजनों की प्रिय हो जिसके हाथ-पाँव छोटे हो दृढ निश्चय वाली हो और बच्चो को प्रिय हो पितृ और देवताओ की पूजा करती हो और स्वच्छन्द रहती हो गुरुजनो को आदर देती हो विश्वासपात्र हो और क्लेशों को शान्ति से सहन करती हो ऐसी स्त्री को गऊशीला कहा जाता है।

भरत सात्विक अभिनय के सन्दर्भ में केवल लोक के प्राणियो के स्वभाव तथा चारित्रिक लक्षणो के निरीक्षण तक ही नहीं जाता वह इन चरित्रों की भूमिका करने वाले पात्रों के अभिनय की प्रकृति के विश्लेषण तक पहुँचता है। वह अध्याय २६ के श्लोक १ में पात्रों की ३ प्रकार की

प्रकृति बताता है। इन्हे वह **अनुरूपा विरूपा** तथा **रूपानुरूपा** कहता है। प्रकृति के ये तीन रूप पात्र द्वारा अभिनीत किए जाने वाले पक्ष से सम्बन्धित हैं।

भरत पात्रो की प्रकृति के इन तीनो रूपो की परिभाषा देते हुए कहता है कि भूमिका करने वाले व्यक्ति की आयु और शारीरिक अवस्था यदि उस पात्र के अनुरूप है जिसकी वह भूमिका कर रहा है तो उस पात्र प्रकृति को अनुरूपा कहा जाता है। जैसे कोई १६ वर्ष की सुन्दर सुडौल और प्रियदर्शिनी कन्या सीता की भूमिका करे तो वह अनुरूपा प्रकृति कहलायेगी। जब कोई अधिक आयु की स्त्री उस भूमिका को करेगी तो वह विरूपा कहलाएगी। अथवा कोई लडका सीता बनकर भूमिका करे तो वह पात्र-प्रकृति विरूपा कहलायेगी। रूपानुरूपा के सम्बन्ध में भरत कहता है कि जब कोई स्त्री-पुरुष तथा स्त्री दोनो के मनोभावो का अभिनय करे अथवा कोई बालक बच्चे तथा बूढे दोनो के मनोभावों का अभिनय करे अथवा कोई बालक बच्चे तथा बूढे दोनो के भावो को प्रदर्शित करे तो वह पात्र प्रकृति रूपानुरूपा कहलाती है।

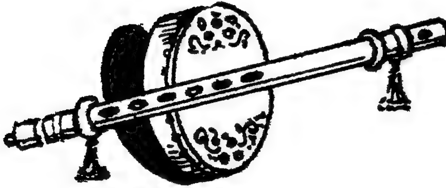
सात्त्विक अभिनय का क्षेत्र बहुत व्यापक है। ४९ प्रकार के भावो मे भरत ८ सात्त्विक भावो की चर्चा करता है। उनकी चर्चा हम रस के प्रकरण मे करेगे। इन भावो के नाम १ - स्तम्भ २ - स्वेद ३ - रोमाच ४ - स्वरभेद ५ - वेपथु ६ - वैवर्ण्य ७ - अश्रु और ८ - प्रलय हैं। यह सत्य है कि इनका सम्बन्ध सत्त्व से है किन्तु ये सब दृश्यशील हैं।

सात्त्विक अभिनय की महत्ता स्पष्ट करते हुए भरत निर्देश देता है कि **जिस प्रकार जीव एक शरीर को त्याग कर अन्य शरीर मे प्रवेश करके उसके अनुरूप कार्य करने लगता है, उसी प्रकार भूमिका करने वाले पात्र को मंच पर प्रवेश करने से पूर्व अभिनीत करने वाले पात्र का मानसिक स्मरण करना चाहिए और उसी मनोदशा में उस पात्र जैसी वाणी और आंगिक चेष्टायें सम्पन्न करनी चाहिए।**

भरत का अभिनय मानव के मनोविज्ञान की मुद्रासापेक्ष्य प्रस्तुति है। नाटक मे कथानक होता है। कथानक की व्यजना पात्रो के माध्यम से होती

है पात्रो के मनोभाव अभिनय से व्यक्त होते हैं। भरत का अभिनय इतना विस्तृत है कि उसका सम्बन्ध लेखक प्रयोगकर्त्ता तथा प्रेक्षकों की सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोदशाओं के जटिल कार्य-व्यापार के ताने-बाने से जुडा हुआ है।

भरत की सबसे बडी उपलब्धि यही है कि उसने मन के अमूर्त विज्ञान को रूपायित करने की ऐसी शाश्वत व्याकरण बना दी, जैसे महर्षि पाणिनि ने सस्कृत की व्याकरण बनाई थी। भरत द्वारा रचित अभिनय की व्याकरण पाणिनि की व्याकरण की ही भाँति शाश्वत और सम्पूर्ण है। भरत के बाद से अद्यतन कितने ही नाट्यशास्त्री हुए, किन्तु इसमें किंचित भी परिवर्तन नहीं कर सके। भरत के द्वारा प्रतिपादित अभिनय एक तत्त्व नहीं अपितु जीवन्त परम्परा है सम्पूर्ण विश्व के नाट्य-जगत की चेतना सत्ता का सशक्त उदाहरण है।



अध्याय पाँच

रस और भाव

रसो के जन्म की यह प्रक्रिया दरअसल नाट्यशास्त्र' का संक्षिप्त सा वर्णन नही अपितु मानव-सभ्यता के विकास की कहानी है।इतना ही नही मानव के मनोभावो के विकास की कहानी है। हिन्दू-धर्म के ग्रथ देखे मुसलमानो के देखे या ईसाइयो के देखे। सभी मे यह उल्लेख देखने को मिलता है कि इस ससार मे सबसे पहले एक पुरुष और एक स्त्री का सयोग हुआ। उनके मन मे रति का भाव उत्पन्न हुआ जो कालान्तर मे श्रृगार-रस कहलाया।



सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्न सर्वशिल्पप्रवर्तकम् ।
नाट्याख्यं पंचमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ।।

१-१५

यह सारे शास्त्रो से सुसम्पन्न तथा सारे शिल्पों का प्रवर्तक सिद्ध होगा। मैने यह पंचम वेद रूपी नाटय ऐसा बनाया है।

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।।

१-१४

यह धर्म अर्थ यश तथा सदोपदेशों का संग्रह है जो लोक के समस्त कर्मों का दर्पण सिद्ध होगा।

रस नाटयशास्त्र' की इतनी महत्वपूर्ण देन है कि इस पर हर शताब्दी मे अगणित आचार्य ग्रन्थ लिखते रहे है। **काव्यशास्त्र**के विद्वानो ने इसका अनेक प्रकार से विशद वर्णन किया है। इतना ही नही कुछ आचार्यों ने इसे **काव्य की आत्मा** तक कह डाला। देश मे जब भी जो भाषा प्रचलित हुई उनमे रस पर ग्रन्थ पर ग्रन्थ रचे जाते रहे।

भरत ने 'नाटयशास्त्र' मे रस का विवेचन छटवे अध्याय मे प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि शास्त्र का छटवॉ अध्याय विशेष रूप से रस पर लिखा गया है किन्तु यह भी सत्य है कि पूरे शास्त्र मे वह अन्य विषयो से भी रस का अनिवार्य सम्बन्ध जोडता है।रस पर चर्चा करते समय यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि भरत ने दृश्य-काव्य की शिक्षा देते हुए रस का वर्णन किया था। बाद के आचार्यों ने रस का सम्बन्ध काव्य अर्थात् श्रव्य से जोडकर रस की व्याख्या अपने-अपने ढग से प्रस्तुत की।

भरत ने रस को अपने शास्त्र मे न तो **ब्रह्मानन्द सहोदर** बताया और न विभाव के **आलम्बन** तथा **उद्दीपन** नामक उसके दो भेद किये। रस की ये परिभाषाये बाद के आचार्यों की दी हुई हैं।

रस का स्वरूप -

भरत रस की चर्चा प्रारम्भ करते हुए कहता है कि रस के बिना प्रयोग के किसी भी अग की सही जानकारी या अनुभूति नही हो सकती। रस कोई स्थूल वस्तु नही। इसका आनन्द मात्र मानसिक स्तर पर होता है। भरत शास्त्र मे **आठ रसो** की गणना करता है।आठ रसो के स्थायी भाव बताता है। रसो के आठ देवता तथा आठ वर्ण भी बताता है। रस का आस्वादन लेने की विधि का विवेचन करता है और रस की निष्पत्ति के विधान पर प्रकाश डालता है। **भरत का रस मानसिक आस्वादन की वस्तु है**।

वैसे लोक मे नवरस प्रचलित हैं। नवे रस के रूप मे **शान्त रस** की चर्चा की जाती है। काव्यशास्त्रीय परम्परा मे सभी आचार्यों ने रस आठ के बजाय नौ बताए हैं। यही कारण है कि लोक मे नवरस प्रचलित हैं।

नाटयशास्त्र' मे भी आठ रसो की व्याख्या के बाद शान्त रस की चर्चा की गई है।शान्त रस से सम्बन्धित शास्त्र मे साढे पाँच श्लोक दिए गए हैं

किन्तु इन श्लोको पर क्रमिक सख्या नहीं है। इनसे पहले तथा बाद के श्लोको मे श्लोक सख्या दी गई है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि शान्त रस के साढे पाच श्लोको के बाद वाले श्लोक मे कहा गया है "**इत्यष्टौ रसा** स्मृता'। अर्थात् ये आठ रस कहे जाते हैं।

गहन अध्ययन करने से बात साफ हो जाती है कि शान्त रस के श्लोक भरत के मूल नही वे बाद मे जोडे गए हैं। अनेक विद्वानो का मत है कि शान्त रस का प्रवर्तन **अभिनव गुप्त** द्वारा किया गया। ग्रन्थ को देखने से लगता भी है कि यह कार्य अभिनव गुप्त ने ही किया होगा। अभिनव गुप्त अपनी टीका मे **शान्त को नया रस बताता है**। साथ ही उसे भय है कि उसकी मान्यता धूमिल न पड जाए इसलिए वह एक काम और करता है। अन्य रसो की टीका मे यदि वह '**अभिनव भारती**' मे एक पृष्ठ लिखता है तो शान्त रस की टीका लिखते समय वह अनुपात को भूल जाता है और पृष्ठ पर पृष्ठ लिखता चला जाता है। अभिनव गुप्त ने शान्त रस का स्थायी भाव **शम**' या '**निर्वेद**' बताया है। भरत ने भी '**निर्वेद**' नामक भाव की चर्चा की है। भरत ने '**निर्वेद**' नामक भाव की गणना **व्यभिचारी भावो** मे की है। उसके अनुसार ३३ प्रकार के संचारी भावों मे **सबसे पहला संचारी निर्वेद**' है।

कुछ विद्वानों का मत है कि चूँकि शान्त रस के साढ़े पाँच श्लोक 'नाट्यशास्त्र' के मूल पाठ में ही लिखित हैं, अत शान्त रस का प्रवर्तक भी भरत ही है। यदि भरत स्वयं शान्त रस का प्रवर्तक होता तो वह जब आठ रसों के आठ देवताओं के नाम बताता है, आठ रसों के आठ रगो का उल्लेख करता है तब शान्त रस नामक नवें रस के देवता का उल्लेख भी अवश्य करता इस रस का वर्ण भी बताता। भरत केवल आठ रसों वे आठ देवता तथा आठ रसों के आठ वर्ण ही बताता है।

इसके अलावा शास्त्र के सातवें अध्याय में भरत यह बताता है कि किस रस मे किन भावों का प्रयोग किया जाता है। वहाँ भी वह आठ रसों के साथ प्रयोग में आने वाले भावों की चर्चा करता है। नवे रस के प्रयोग में आने वाले भावों का कोई उल्लेख नहीं करता।

इस प्रसग मे सबसे ज्यादा मजे की बात यह है कि अभिनव गुप्त रस नामक छटवे अध्याय की व्याख्या करते समय नवे रस के रूप मे शान्त रस की चर्चा करता है। उसका महत्व बताने के लिए लम्बी व्याख्या ही नही करता अनेक ग्रन्थो के उदाहरण प्रस्तुत करता है किन्तु जब वह 'नाटयशास्त्र' की टीका लिखते हुए उन्तीसवे अध्याय पर पहुँचता है तब उसे भरत के आठ रसो के सिद्वान्त के समक्ष झुक जाना पडता है। वह स्वय अनुभव करता है कि प्रयोग मं शान्त रस का व्यवहार नही किया जा सकता। वह २९ वे अध्याय के श्लोक सख्या १३ के बाद के भाग की व्याख्या करते हुए स्वय लिखता है '**न शान्त रस प्रधानता प्रयोगस्य भवति**' टीका लिखते समय प्रारम्भ मे अभिनव गुप्ताचार्य के मन मे अनेक भ्रान्तियाँ रही हैं। कुछ अन्य प्रसग भी 'नाटयशास्त्र' मे ऐसे हैं जिनसे अभिनव गुप्त की भ्रान्तियाँ स्पष्ट होती हैं।

रसो का विकास -

भरत कहता है कि पहले **श्रृंगार**, **रौद्र**, **वीर** तथा **बीभत्स** नामक चार रसो की उत्पत्ति हुई। बाद मे **श्रृंगार रस से हास्य** का **रौद्र से करूण** का **वीर** रस से **अद्‌भुत** का और **बीभत्स** से **भयानक** रस का जन्म हुआ।

रसों के जन्म की यह प्रक्रिया दरअसल **नाट्यशास्त्र** का संक्षिप्त सा वर्णन नहीं अपितु मानव-सभ्यता के विकास की कहानी है। इतना ही नहीं मानव के मनोभावों के विकास की कहानी है। हिन्दू-धर्म के ग्रन्थ देखें मुसलमानो के देखें या ईसाईयों के देखें।सभी में यह उल्लेख देखने को मिलता है कि इस संसार में सबसे पहले एक पुरुष और एक स्त्री का संयोग हुआ। उनके मिलन से सृष्टि का विकास हुआ। हिन्दू ग्रन्थों में प्रथम पुरुष और प्रथम स्त्री का नाम मनु और शतरूपा बताया गया है, मुसलमानों के धर्म ग्रन्थों में आदम और हौवा तथा ईसाइयों के बाइविल में एडमेन और ईव।

सृष्टि के हरे-भरे आंगन में जब इस प्रथम युगल का मिलन हुआ होगा, तब एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हुए दोनों के हृदय में रति भाव

जाग्रत हुआ होगा। भरत ने श्रृंगार रस के स्थायी भाव का नाम रति बताया है। दोनो के सयोग के समय जब कोई व्यवधान आया होगा तो स्वाभाविक रूप से मन मे क्रोध उत्पन्न हुआ होगा। भरत ने रौद्र रस के स्थायी भाव का नाम क्रोध बताया है। भविष्य में रति-क्रीडा के समय व्यवधान उत्पन्न न हो इस ध्येय से उन्होने जगल से घास-फूँस पेड-पत्र तोडकर कुटिया बनाई होगी। कुटिया या सुरक्षित स्थान बनाने के लिए मन मे उत्साह जाग्रत होना स्वाभाविक है और भरत वीर रस के स्थायी भाव का नाम उत्साह बताता है।प्रकृति द्वारा उत्पन्न वृक्षावलियो तथा हरित वनस्पतियो के मुरझाये तथा ध्वस्त रूप को देखकर मन मे जुगुप्सा के भाव का जन्म हुआ होगा जो बीभत्स रस का स्थायी भाव कहा गया है। इस सन्दर्भ मे यह तथ्य विचारणीय है कि वह सृष्टि का प्रथम पुरुष था। उसके आस-पास फैली प्राकृतिक सुषमा का जन्मदाता वह नही था। तब तक वह यह भी नही जानता था कि किस वनस्पति का बीज कैसा होता है कब बोया जाता है? उसने अपने आनन्द के लिए उस हरियाली से जाने क्या-क्या तोडकर अपना सुरक्षित स्थान बनाया होगा। ऐसी दशा मे उसके हृदय मे प्रकृति सौन्दर्य के क्षत-विक्षत रूप को देखकर मन मे घृणा का भाव का जन्म होना स्वाभाविक था।

भरत के रसो का विकास-क्रम मानव के स्वाभाविक एवम् प्राकृतिक विकास के साथ-साथ उसके मनोभावों के विकास को प्रस्तुत करता है। लगता है इस विषय पर भरत से पूर्व ही पर्याप्त चिन्तन-मनन किया जा चुका था। लम्बे चिन्तन के निष्कर्ष निकाले जा चुके थे और भरत से बहुत पूर्व ही रस के सिद्धान्त भी बनाये जा चुके थे।कारण यह है कि भरत रस के अध्याय में अनेक स्थानों पर ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है जिन्हें वह वश-परम्परा से प्राप्त बताता है। एक स्थान पर वह **'रस विचार'** नामक एक ग्रन्थ के आमुख से एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन बातों से स्पष्ट होता है कि रस की परम्परा भरत के 'नाट्यशास्त्र' से बहुत पूर्व ही स्थापित हो चुकी थी।

भरत ने पूर्ववर्ती परम्परा को आदर सहित स्वीकार किया और अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार अपने ग्रन्थ में रस के स्वरूप का विवरण

प्रस्तुत किया। रस की प्राचीन परम्परा का आभास इस बात से भी होता है कि इसका विवेचन अधिकाशत गद्य मे किया गया है। यद्यपि प्राचीन कुछ कथ्य पद्य मे हैं।

भरत कहता है कि श्रृगारमूलक क्रियाओ के अनुकरण से हास्य रस उत्पन्न हुआ।रौद्र से करुण की उत्पत्ति हुई वीर रस से अदभुत रस पैदा हुआ और बीभत्स रस से भयानक रस का जन्म हुआ। चार मूल रसो से अन्य चार रसो की उत्पत्ति का सिद्धान्त भी उसी विकासवादी सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। अन्तर यह है कि इस विधान मे क्रिया और प्रतिक्रिया सम्मिलित हैं।

श्रृगार रस के अनुकरण से हास्य की उत्पत्ति का अर्थ है कि प्राणी ने कभी किसी अन्य जीवधारी की रति क्रीडा का अनुकरण करने की चेष्टा की हो अथवा अपने ही क्रीडा-विलास का स्मरण करके किसी क्षण उन क्रियाओं का अनुकरण किया हो। ऐसी स्थिति मे हँसी आना स्वाभाविक है।

इसी प्रकार जब एक प्राणी को क्रोध आया उसने क्रोध मे किसी को क्षति पहुँचायी।एक की विजय हुई दूसरे की पराजय। पराजित व्यक्ति के प्रति दर्शक के मन मे करुणा का भाव जाग्रत होना स्वाभाविक है। इस प्रसग मे यह बात ध्यान रखने की है कि उस समय का मानव आदिम स्थिति का था। तब तक उसके मन मे ईर्ष्या कलह, नीति-रीति की भावना विकसित नही हुई थी।

वीर रस का स्थायी भाव शास्त्र मे उत्साह बताया गया है और वीर रस से अदभुत रस की उत्पत्ति मानी गयी है। इसका आशय यह है कि जब किसी व्यक्ति के मन मे कोई दुष्कर कार्य करने के लिए उत्साह जाग्रत हुआ उसने जान की बाजी लगाकर उसे कर डाला। वह किसी पर्वत की चट्टान को काटकर मार्ग बनाने का काम रहा हो अथवा झोंपड़ी की सुरक्षा के लिए किसी कटीले पेड़ की टहनियों से बाडा बनाने की योजना। जब उसने कठिन काम कर डाला तो उसे देखकर दर्शक को आश्चर्य हुआ होगा। विस्मय के भाव का रस अद्‌भुत बताया गया है।

भरत कहता है कि बीभत्स रस से भयानक रस का जन्म हुआ। इसमे भी प्रतिक्रिया का सिद्धान्त स्पष्ट है। प्रकृति या पुरुष के कुत्सित एवम घिनौने रूप को देखकर दर्शक के मन मे यह भाव उत्पन्न हो सकता है कि यदि मेरा रूप भी ऐसा ही हो जावे तो क्या होगा? मानव मन की इस भावना का नाम भरत ने भय रख दिया। क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया कर्म और कारण आचरण और उसके प्रभाव ने मानव के मन मे इन मनोदशाओ को जन्म दिया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इनके लक्षण और स्वरूप की व्याख्याएँ की गईं।

दरअसल मानव के मन की ये मनोदशाएँ देशकाल निरपेक्ष हैं। ये भाव आदिम मनुष्य मे थे तो आज भी हर देश के हर वर्ग के हर क्षेत्र के मनुष्यो के मन मे विद्यमान हैं। हर्ष क्रोध भय घृणा, विस्मय शोक आदि ऐसी शाश्वत मनोदशाएँ हैं जो हर युग के मानव मे सदैव विद्यमान रही हैं और अनन्त काल तक रहेगी। भरत के पूर्वजो ने मनुष्य की इन मनोदशाओ को समझकर इन्हे व्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर दिया तथा इनके नाम रख दिए।

सभ्यता के विकास के साथ जैसे-जैसे मनुष्य मे बौद्धिक चेतना आती गयी उसके जीवन का कार्य क्षेत्र बढ़ता गया। यही बात भरत के रस सम्बन्धी विवेचन मे हुआ। भरत ने नाटयशास्त्र मे श्रृगार रस के तीन भेद किए। इन्हें शास्त्र मे **धर्म श्रृगार अर्थ श्रृगार** तथा **काम श्रृगार** कहा गया। इसी प्रकार हास्य के **आद्याग**, **अगज** तथा **विप्रहास्य** नामक तीन रूप बताए। रौद्र रस के भी **रूपात्मक-रौद्र**, **अगात्मक-रौद्र** तथा **स्वभावात्मक-रौद्र** नामक ३ भेद कहे गये हैं। करुण रस के ३ रूपो का सम्बन्ध **धर्म-हानि**, **अर्थ-हानि** तथा **शोक** से जोडा गया। वीर रस के **दानवीर**, **धर्मवीर** तथा **युद्धवीर** नामक ३ भेद किए गए।

भयानक रस के ३ भेद करते हुए उन्हे **निन्दा-भय**, **अपराध-भय** और **पीड़ा-भय** कहा गया है। बीभत्स के ३ भेदो मे **क्षोभ से उत्पन्न उद्वेग** **विष्ठा** तथा **कृमि** तथा **रुधिरजनित** बीभत्स कहा गया। अत ३ प्रकार की घृणा बताई गई हैं। अद्भुत के २ भेद करते हुए **दिव्य दर्शन से** विस्मय तथा **हर्षजनित आनन्द** नामक दो भेद किए गये हैं। इस विधान

इनके बाद वह तैतीस **व्यभिचारी भावों** की गणना करता है। भरत के समय व्यभिचारी शब्द का अर्थ दुराचारी नही था। इस शब्द की रचना 'चर' धातु से हुई जिसका अर्थ था चलने वाले। अर्थात् चलने वाले भाव। भरत इसी दृष्टि से शास्त्र मे इनके लिए व्यभिचारी के स्थान पर सचारी भाव शब्द का प्रयोग भी करता है।

तैतीस व्यभिचारी भावो के नाम वह इस प्रकार गिनाता है। १ - निर्वेद २ - ग्लानि ३ - शका ४ - असूया ५ - मद ६ - श्रम ७ - आलस्य ८ दैन्य ९ - चिन्ता १० - मोह ११ - स्मृति १२ - धृति १३ - क्रीडा १४ -चपलता १५ - हर्ष १६ - आवेग १७ - जडता १८ - गर्व १९ - विषाद २० - उत्सुकता २१ - निद्रा २२ - अपस्मार २३ - सुप्त २४ - विबोध २५ - अमर्ष २६ - अवहित्थ २७ - उग्रता २८ - मति २९ - व्याधि ३० - उन्माद ३१ - मरण ३२ - त्रास तथा ३३ - वितर्क। अभिनय करते समय ये भाव पात्र के मुख पर पल-पल मे आते-जाते रहते हैं बनते-बिगडते रहते हैं अत इन्हे व्यभिचारी या सचारी कहा गया है।

दिखाई देनेवाले भावो मे इनके बाद सात्त्विक भावो का उल्लेख शास्त्र मे किया गया है। भरत इनकी सख्या ८ बताता है। इनके बारे मे भरत कहता है कि सात्त्विक भावो का सम्बन्ध मन से है। प्राणी की देह मे सत्त्व रहता है अवसर आने पर सत्व से भाव की उत्पत्ति होती है। भरत का मत है कि सात्त्विक भावों का अभिनय बहुत दुष्कर है। कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी इनका अभिनय सम्पन्न नही हो पाता। भरत इनके नाम शास्त्र मे इस प्रकार बताता है।

१ - स्तम्भ, २ - स्वेद ३ - रोमाच ४ - स्वरभग ५ - वेपथु ६ - विवर्णता, ७ - अश्रु तथा ८ - प्रलय।

स्तम्भ का अर्थ है जडवत् हो जाना स्वेद का पसीना आना रोमांच का अर्थ है रायें कांटे की तरह खड़े हो जाना स्वरभंग का अर्थ है गला घिर आना कि मुँह से कुछ का कुछ निकलने लगे, वेपथु का अर्थ है काँपने लगना विवर्णता का अर्थ है मुँह का रंग लाल; पीला या काला पड़ जाना, अश्रु का

अर्थ आँखो से आसूँ गिरना तथा प्रलय का अर्थ है मूर्च्छित हो जाना।

इस प्रकार भरत ८ स्थायी भाव ३३ व्यभिचारी भाव तथा ८ सात्त्विक भावो को मिलाकर भावो की सख्या ४९ बताता है। इन ४९ भावों का सम्बन्ध वह दृश्यशीलता से जोडता है। अर्थात् अभिनय करते समय यह ४९ भाव किसी न किसी रूप तथा किसी न किसी क्रम मे प्रयोग में आते रहते हैं।

भरत जानता है कि अभिनय मे अनेक प्रकार की मनोदशाओ का प्रदर्शन करना होता है। अत वह अगली सीढ़ी पर पहुँच कर भावो का एक अन्य रूप प्रस्तुत करता है। लगता है सैंकडो वर्षों के प्रयोग के बाद भरतो ने भावो के पूरे रहस्य को अन्त तक समझ लिया था और उनकी नियमबद्ध व्याकरण रचना कर दी थी। भरत ने कहा कि हर भाव हर रस मे इस्तेमाल नही किया जाता। वह बताता है कि किस रस मे कौन-कौन से भावो का प्रयोग किया जाता है। इस विवरण मे वह भूमिका करने वाले के मुख पर एक साथ दो भावो का संयोग कराता है।

भरत का कथन है कि श्रृंगार रस के अभिनय मे ४९ भावो मे से आलस्य उग्रता तथा जुगुप्सा नामक ३ भावों का प्रयोग नही किया जाता। विप्रलम्भ श्रृगार मे निर्वेद ग्लानि शंका असूया श्रम चिन्ता उत्सुकता निद्रा स्वप्न विबोध व्याधि उन्माद अपस्मार जडता तथा मरण नामक भावो का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् अभिनय मे पात्र के मुख पर श्रृंगार के स्थायी भाव रति के साथ-साथ इनमे से भी अपेक्षित भाव साकार होने चाहिए। मतलब यह है कि पात्र के मुख पर दुहरे भाव दिखाई देने चाहिए। जैसे वियोग श्रृंगार मे वह प्रथम भाव निर्वेद बताता है तो पात्र के मुख पर वियोग श्रृंगार भी दिखे साथ ही निर्वेद भी।

हास्य रस के प्रसग मे वह कहता है कि ग्लानि शंका असूया श्रम चपलता सुप्त निद्रा तथा अवहित्थ नामक भावों का प्रयोग किया जाता है।

करुण रस के अन्तर्गत निर्वेद ग्लानि चिन्ता उत्सुकता आवेग भ्रम मोह श्रम भय विषाद दैन्य व्याधि जड़ता उन्माद अपस्मार त्रास

इनके बाद वह तैतीस **व्यभिचारी भावो** की गणना करता है। भरत के समय व्यभिचारी शब्द का अर्थ दुराचारी नही था। इस शब्द की रचना 'चर' धातु से हुई जिसका अर्थ था चलने वाले। अर्थात् चलने वाले भाव। भरत इसी दृष्टि से शास्त्र में इनके लिए व्यभिचारी के स्थान पर सचारी भाव शब्द का प्रयोग भी करता है।

तैतीस व्यभिचारी भावो के नाम वह इस प्रकार गिनाता है। १ - निर्वेद २ - ग्लानि ३ - शंका ४ - असूया ५ - मद ६ - श्रम ७ - आलस्य ८ दैन्य ९ - चिन्ता १० - मोह ११ - स्मृति १२ - धृति १३ - क्रीडा १४ -चपलता १५ - हर्ष १६ - आवेग १७ - जडता १८ - गर्व १९ - विषाद २० - उत्सुकता २१ - निद्रा २२ - अपस्मार २३ - सुप्त २४ - विबोध २५ - अमर्ष २६ - अवहित्थ २७ - उग्रता २८ - मति २९ - व्याधि ३० - उन्माद ३१ - मरण ३२ - त्रास तथा ३३ - वितर्क। अभिनय करते समय ये भाव पात्र के मुख पर पल-पल मे आते-जाते रहते हैं बनते-बिगडते रहते हैं अत इन्हे व्यभिचारी या सचारी कहा गया है।

दिखाई देनेवाले भावो मे इनके बाद सात्त्विक भावो का उल्लेख शास्त्र मे किया गया है। भरत इनकी सख्या ८ बताता है। इनके बारे मे भरत कहता है कि सात्त्विक भावो का सम्बन्ध मन से है। प्राणी की देह मे सत्त्व रहता है अवसर आने पर सत्व से भाव की उत्पत्ति होती है। भरत का मत है कि सात्त्विक भावों का अभिनय बहुत दुष्कर है। कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी इनका अभिनय सम्पन्न नही हो पाता। भरत इनके नाम शास्त्र मे इस प्रकार बताता है।

१ - स्तम्भ २ - स्वेद, ३ - रोमांच ४ - स्वरभंग ५ - वेपथु ६ - विवर्णता ७ - अश्रु तथा ८ - प्रलय।

स्तम्भ का अर्थ है जडवत् हो जाना, स्वेद का पसीना आना रोमांच का अर्थ है रायें कांटे की तरह खड़े हो जाना, स्वरभंग का अर्थ है गला घिर आना कि मुँह से कुछ का कुछ निकलने लगे वेपथु का अर्थ है काँपने लगना विवर्णता का अर्थ है मुँह का रंग लाल, पीला या काला पड़ जाना, अश्रु का

अर्थ आँखो से आसूँ गिरना तथा प्रलय का अर्थ है मूर्च्छित हो जाना।

इस प्रकार भरत ८ स्थायी भाव ३३ व्यभिचारी भाव तथा ८ सात्विक भावो को मिलाकर भावों की सख्या ४९ बताता है। इन ४९ भावों का सम्बन्ध वह दृश्यशीलता से जोडता है। अर्थात् अभिनय करते समय यह ४९ भाव किसी न किसी रूप तथा किसी न किसी क्रम मे प्रयोग में आते रहते हैं।

भरत जानता है कि अभिनय मे अनेक प्रकार की मनोदशाओ का प्रदर्शन करना होता है। अत वह अगली सीढी पर पहुँच कर भावों का एक अन्य रूप प्रस्तुत करता है। लगता है सैंकडो वर्षों के प्रयोग के बाद भरतों ने भावो के पूरे रहस्य को अन्त तक समझ लिया था और उनकी नियमबद्ध व्याकरण रचना कर दी थी। भरत ने कहा कि हर भाव हर रस में इस्तेमाल नही किया जाता। वह बताता है कि किस रस मे कौन-कौन से भावों का प्रयोग किया जाता है। इस विवरण मे वह भूमिका करने वाले के मुख पर एक साथ दो भावो का सयोग कराता है।

भरत का कथन है कि श्रृंगार रस के अभिनय मे ४९ भावो में से आलस्य उग्रता तथा जुगुप्सा नामक ३ भावो का प्रयोग नही किया जाता। विप्रलम्भ श्रृंगार मे निर्वेद ग्लानि शंका असूया श्रम चिन्ता उत्सुकता निद्रा स्वप्न विबोध, व्याधि उन्माद अपस्मार जडता तथा मरण नामक भावो का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् अभिनय मे पात्र के मुख पर श्रृंगार के स्थायी भाव रति के साथ-साथ इनमे से भी अपेक्षित भाव साकार होने चाहिए। मतलब यह है कि पात्र के मुख पर दुहरे भाव दिखाई देने चाहिए। जैसे वियोग श्रृगार मे वह प्रथम भाव निर्वेद बताता है तो पात्र के मुख पर वियोग श्रृंगार भी दिखे साथ ही निर्वेद भी।

हास्य रस के प्रसग मे वह कहता है कि ग्लानि शंका असूया श्रम चपलता सुप्त निद्रा तथा अवहित्य नामक भावों का प्रयोग किया जाता है।

करुण रस के अन्तर्गत निर्वेद ग्लानि चिन्ता उत्सुकता आवेग, भ्रम मोह श्रम भय विषाद दैन्य व्याधि जड़ता उन्माद अपस्मार त्रास,

कल्पनाये करता है किन्तु उनम से जिनको वह लेखनी से कागज पर उतार देता है काव्य के रूप मे उन्हे साकार कर देता है वे स्थायी भाव कहलाते हैं। कागज पर लिपिबद्ध होकर कवि के हृदय जगत के भाव स्थायित्व पा जाते हैं। देश और काल के बदल जाने पर भी वे मूल भाव उसमे स्थायी रूप से विद्यमान रहते है। उस रचना को जब भी कोई व्यक्ति पढता है जिस युग मे पढता है उन शब्दो के माध्यम से उसे उन्ही भावो की अनुभूति होती है।

उदाहरण के लिए कालिदास ने **अभिज्ञान शाकुन्तलम्** नाटक मे शकुन्तला की आश्रम से विदाई के समय महर्षि कण्व से कहलाया **अर्थोहि कन्या परकेय इव** इन शब्दो मे कालिदास ने कण्व के शब्दो मे करुणा भर दी। बेटी की विदाई के समय प्रत्येक अभिभावक का हृदय शोक सतप्त हो उठता है। कालिदास ने शोक के भाव को शब्दो मे बॉध दिया। वे भाव सदा-सदा के लिए उसकी कृति मे समाहित होकर उस समय के लिए स्थायी हो गए जब तक वह रचना इस ससार मे रहेगी। उस रचना को जिसने भी जब भी पढा होगा या आगे पढेगा उसे उस प्रसग मे शोक नामक स्थायी भाव की ही अनुभूति होगी।

प्रदर्शन के समय स्थायी भाव रूपी यही अनुभूति अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देती है।कवि की कृति से चलकर यह आचार्य अथवा निदेशक के मानसलोक मे पहुॅचकर अपने स्वरूप का उसे सम्यक ज्ञान कराती है। इसी प्रकार नट अथवा अभिनेता के भाव-लोक मे पहुँचकर उसे कथ्य के परिवेश का ज्ञान कराती है। नट के कौशल मे मूर्त होकर यह दर्शको की भावनाओ को उस रग मे रगती है।

विभाव -

भरत के अनुसार विभाव रसानुभूति की एक अदृश्य किन्तु अनिवार्य प्रक्रिया का अग है। भरत ने विभाव शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह वाणी और शरीर को मूल शब्दो के अभिप्राय से जोडता है। विभावित करना और सुवासित करना भरत ने समानार्थक शब्द बताए हैं। इसका अर्थ सरल भाषा मे यंह हुआ कि किसी चीज का किसी मे रम जाना।

यदि विभाव शब्द मे से 'वि' प्रत्यय हटाकर प्र प्रत्यय लगा दे तो विभाग के स्थान पर यह शब्द प्रभाव बन जाता है। वर्तमान भाषा मे प्रभाव शब्द प्रचलित है। अत इसका अर्थ आसानी से समझ मे आ जाता है।

भरत का विभाव से तात्पर्य यह है कि जो भी पात्र भूमिका कर रहा हो पहले उसका मन लेखक द्वारा रचित स्थायी-भाव से प्रभावित होना चाहिए।

जब तक पात्र पाठक या निर्देशक का मन लेखक के मूल भाव से प्रभावित नही होता वह उसकी प्रस्तुति नही कर सकता। इस विधान के द्वारा भरत पात्र के मनोयोग को उसके अभिनय के साथ जोडता है।

पात्र यदि लेखक के भाव को मात्र आगिक चेष्टाओ से व्यक्त करे तो उसके अभिनय मे और कठपुतली के अभिनय मे कोई अन्तर नही रह जाता। या यो कहे कि लेखक के मूल भाव से प्रभावित हुए बिना यदि शरीर की चेष्टाओ से अभिनय किया जाए तो वह मात्र यान्त्रिक होगा उसमे जीवन्तता तो तभी आवेगी जब पात्र का हृदय भी लेखक के मूल भाव के प्रभाव से ओत-प्रोत हो।

विभाव 'पर-भाव' से 'स्व-भाव' को प्रभावित करने का माध्यम है। यह एक प्रक्रिया है जो प्रयोग काल मे पात्र की मन स्थिति को लेखक की मन स्थिति मे परिवर्तित करती है। यह प्रक्रिया प्रयोग काल मे आरम्भ से अन्त तक चलती है। इस प्रक्रिया मे भावो की कोई गणना नही होती। यही कारण है कि भरत ने अन्य भावो की भाति विभाव की कोई सख्या नही बताई।

अनुभाव -

अभिनय के द्वारा रस का उद्रेक करने की प्रक्रिया का यह विभाव से आगे का चरण है। भरत कहता है कि शाखा अग उपाग और सत्त्व से संयुक्त पात्र की क्रिया अनुभाव कहलाती है।

शाखा नाटय शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। नाटयशास्त्र के बाईसवें

कल्पनाये करता है किन्तु उनम से जिनको वह लेखनी से कागज पर उतार देता है काव्य के रूप मे उन्हे साकार कर देता है वे स्थायी भाव कहलाते हैं। कागज पर लिपिबद्ध होकर कवि के हृदय जगत के भाव स्थायित्व पा जाते हैं। देश और काल के बदल जाने पर भी वे मूल भाव उसमे स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। उस रचना को जब भी कोई व्यक्ति पढता है जिस युग मे पढता है उन शब्दो के माध्यम से उसे उन्ही भावो की अनुभूति होती है।

उदाहरण के लिए कालिदास ने **अभिज्ञान शाकुन्तलम्** नाटक मे शकुन्तला की आश्रम से विदाई के समय महर्षि कण्व से कहलाया **अर्थोहि कन्या परकेय इव** इन शब्दो मे कालिदास ने कण्व के शब्दो मे करुणा भर दी। बेटी की विदाई के समय प्रत्येक अभिभावक का हृदय शोक सतप्त हो उठता है। कालिदास ने शोक के भाव को शब्दो मे बॉध दिया। वे भाव सदा-सदा के लिए उसकी कृति मे समाहित होकर उस समय के लिए स्थायी हो गए जब तक वह रचना इस ससार मे रहेगी। उस रचना को जिसने भी जब भी पढा होगा या आगे पढेगा उसे उस प्रसग मे शोक नामक स्थायी भाव की ही अनुभूति होगी।

प्रदर्शन के समय स्थायी भाव रूपी यही अनुभूति अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देती है।कवि की कृति से चलकर यह आचार्य अथवा निर्देशक के मानसलोक मे पहुँचकर अपने स्वरूप का उसे सम्यक ज्ञान कराती है। इसी प्रकार नट अथवा अभिनेता के भाव-लोक मे पहुँचकर उसे कथ्य के परिवेश का ज्ञान कराती है। नट के कौशल मे मूर्त होकर यह दर्शको की भावनाओ को उस रग मे रगती है।

विभाव -

भरत के अनुसार विभाव रसानुभूति की एक अदृश्य किन्तु अनिवार्य प्रक्रिया का अग है। भरत ने विभाव शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह वाणी और शरीर को मूल शब्दो के अभिप्राय से जोडता है। विभावित करना और सुवासित करना भरत ने समानार्थक शब्द बताए हैं। इसका अर्थ सरल भाषा मे यह हुआ कि किसी चीज का किसी मे रम जाना।

यदि विभाव शब्द मे से वि प्रत्यय हटाकर प्र प्रत्यय लगा दे तो विभाग के स्थान पर यह शब्द प्रभाव बन जाता है। वर्तमान भाषा मे प्रभाव शब्द प्रचलित है। अत इसका अर्थ आसानी से समझ मे आ जाता है।

भरत का विभाव से तात्पर्य यह है कि जो भी पात्र भूमिका कर रहा हो पहले उसका मन लेखक द्वारा रचित स्थायी-भाव से प्रभावित होना चाहिए।

जब तक पात्र पाठक या निर्देशक का मन लेखक के मूल भाव से प्रभावित नही होता वह उसकी प्रस्तुति नही कर सकता। इस विधान के द्वारा भरत पात्र के मनोयोग को उसके अभिनय के साथ जोडता है।

पात्र यदि लेखक के भाव को मात्र आगिक चेष्टाओ से व्यक्त करे तो उसके अभिनय मे और कठपुतली के अभिनय मे कोई अन्तर नही रह जाता। या यो कहे कि लेखक के मूल भाव से प्रभावित हुए बिना यदि शरीर की चेष्टाओ से अभिनय किया जाए तो वह मात्र यान्त्रिक होगा उसमे जीवन्तता तो तभी आवेगी जब पात्र का हृदय भी लेखक के मूल भाव के प्रभाव से ओत-प्रोत हो।

विभाव पर-भाव से 'स्व-भाव' को प्रभावित करने का माध्यम है। यह एक प्रक्रिया है जो प्रयोग काल मे पात्र की मन स्थिति को लेखक की मन स्थिति मे परिवर्तित करती है। यह प्रक्रिया प्रयोग काल मे आरम्भ से अन्त तक चलती है। इस प्रक्रिया मे भावो की कोई गणना नही होती। यही कारण है कि भरत ने अन्य भावो की भाति विभाव की कोई सख्या नही बताई।

अनुभाव -

अभिनय के द्वारा रस का उद्रेक करने की प्रक्रिया का यह विभाव से आगे का चरण है। भरत कहता है कि शाखा अग उपांग और सत्त्व से सयुक्त पात्र की क्रिया अनुभाव कहलाती है।

शाखा नाटय शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। नाट्यशास्त्र के बाईसवें

के बाद भी प्रयोगकर्ताओ को स्वतन्त्रता देता है कि भावो का प्रयोग करते समय देश-काल की स्थिति का ध्यान रखे और यदि आवश्यकता हो तो भावो मे परिवर्तन कर ले।

सात्त्विक भाव -

सात्त्विक भावो का आधार स्पष्ट करने के लिए भरत इस प्रसग मे सबसे पहले सातवे अध्याय के श्लोक ३१ के बाद की कारिका मे यह स्पष्ट कर देता है कि सत्व का अर्थ मन है। अर्थात् जहाँ भी मै भावो के प्रसग मे सत्व शब्द का प्रयोग करता हूँ वहाँ मेरा अभिप्राय मन से है।

सात्त्विक भावो के द्वारा वह पात्र के मुख पर मन को साकार करना चाहता है। भरत जानता है कि यह कार्य बहुत कठिन है। इसीलिए वह अध्याय सात के श्लोक ९३ के बाद के **गद्य** मे कहता है कि चेष्टा करने पर भी सात्त्विक भावो का अभिनय कभी-कभी बहुत दुष्कर हो जाता है। इसके लिए एक ही उपाय है कि पात्र को मन की समाधि म डूब जाना चाहिए।

आठ सात्त्विक भावो के नाम हम पहल बता आये हैं। इनका सयोग विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के साथ होता है। अभिनय मे सत्व अर्थात् मन का योग होना भरत की दृष्टि मे परम आवश्यक है इसके अभाव मे वह अभिनय का निर्जीव मानता है।

रस और भाव मे अन्तर -

रस और भाव एक दूसरे के पूरक होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न है। जहाँ तक दोनो के स्वरूप का सम्बन्ध है रस और भाव दोनो ही अमूर्त हैं। न रस दिखाई देता है और न भाव। रस का सम्बन्ध मानसिक आनन्द से है और भाव का सत्व से।

भावो का सम्बन्ध सासारिक विषयो से है। ससार के किसी न किसी विषय के सम्पर्क मे आते ही मन मे भावो का जन्म होने लगता है। भाव दुःखात्मक और सुखात्मक दोनो प्रकार के होते हैं। लौकिक जगत की स्थूल और सूक्ष्म वस्तुओ के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले भाग अगणित हो सकते हैं। ससार के विषय रजोगुण प्रधान तमोगुण प्रधान तथा सतोगुण प्रधान कैसे भी हो सकते हैं।

रसों का सम्बन्ध सासारिक विषयों से नही है। रस का सम्बन्ध स्थायी भाव से है। स्थायी भाव मानव मात्र की ८ शाश्वत मनोदशाये हैं। भाव जहाँ दुखात्मक और सुखात्मक दोनों प्रकार के होते हैं वही रस केवल सुखात्मक होता है। रस के क्षेत्र मे करुण भी आनन्दमय अनुभूति बन जाता है। **भाव** अगणित हैं किन्तु रस केवल आठ ही रहते हैं। भावों का सम्बन्ध रजोगुण तमोगुण तथा सतोगुण तीनो से हो सकता है किन्तु रस का सम्बन्ध केवल सतोगुण से है। भावो का आनन्द लौकिक विषयो से जुडा रहता है रसो का आनन्द सूक्ष्म आनन्द की अनुभूति से है।

भावो की अनुभूति ससार के अच्छे-बुरे ऊँचे-नीचे छोटे-बडे स्त्री-पुरुषों सभी को हो सकती है रस की अनुभूति केवल सवेदनशील हृदय-वाले व्यक्तियो को ही होती है। भावो का सम्बन्ध विषयो से है रस का केवल अनुभूति से।

रस की अनुभूति -

रस की अनुभूति किस प्रकार होती है? किसको होती है? इस विषय पर सस्कृत-काल से लेकर आज तक हजारो पुस्तके लिखी जा चुकी हैं। भरत के अध्याय ६ के श्लोक ३१ के बाद सूत्र 'तत्र विभावानुभावव्यभिचारी-सयोगाद्रसनिष्पत्ति' ने इस प्रसग मे सबसे पहले भट्टलोल्लट को रस की निष्पत्ति पर लिखने को प्रेरित किया। यह कहना कठिन है कि भट्टलोल्लट किस शताब्दी में हुए थे। इतना स्पष्ट है कि अभिनव गुप्त से पहले अवश्य हुए थे। कारण यह है कि अभिनव गुप्त ने उनके मतों की समीक्षा अपने ग्रन्थ में की है। तब से प्रारम्भ होकर रस का यह सिलसिला आज तक चलता ही आ रहा है।

हम यहाँ भरत के अनुसार उनका दृष्टिकोण सीधी भाषा में प्रस्तुत कर रहे हैं। भरत इस सूत्र के प्रारम्भ में 'तत्र' शब्द लगाता है। प्राय सभी विद्वानो ने तत्र शब्द की उपेक्षा की है। यदि भरत की दृष्टि में इस शब्द का कोई महत्व न हाता तो वह इसका प्रयोग कभी न करता। तत्र यद्यपि साकेतिक शब्द है। भरत का सन्दर्भ दृश्य काव्य है। अत तत्र का अर्थ 'प्रयोग काल' बन जाता है।

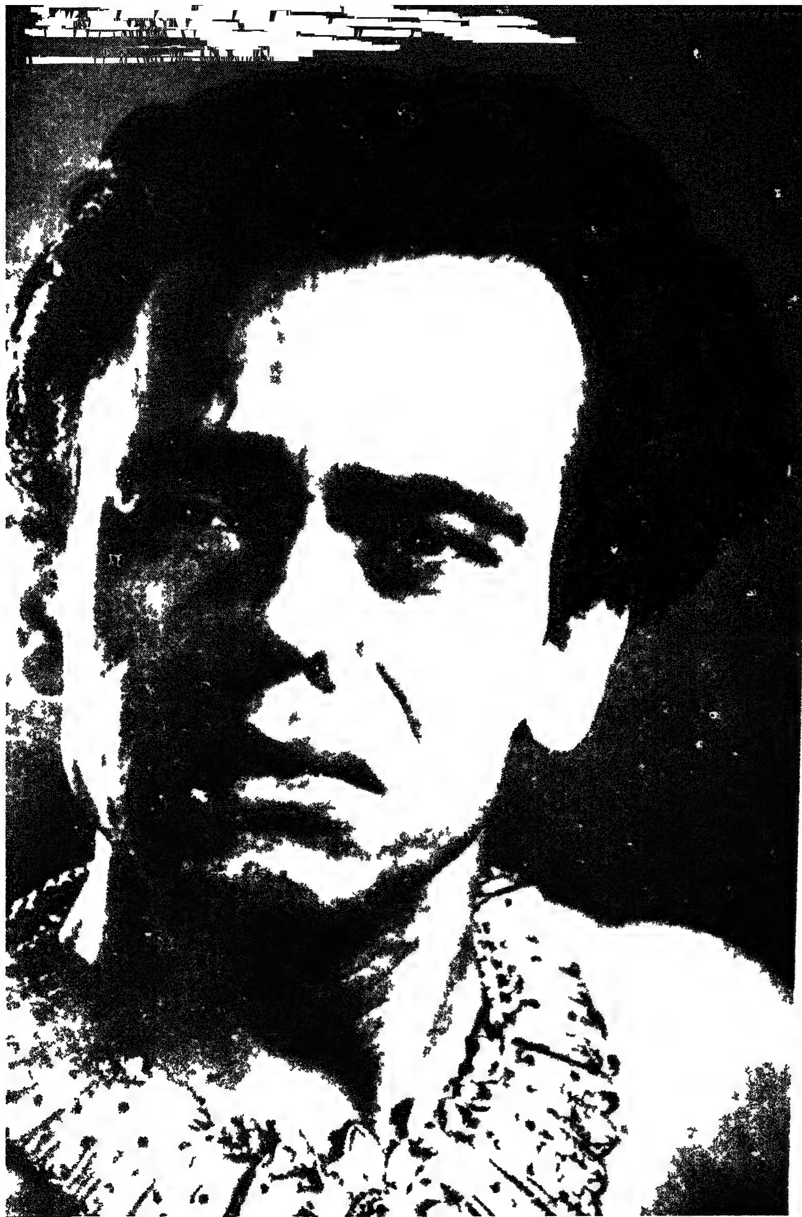
इस सारे वैचारिक आन्दोलन की सबसे बडी कमी यह थी कि इस प्रबुद्ध वर्ग ने कभी भी गम्भीरता से रस पर विचार करने की चेष्टा नही की। नये युग के प्रवर्तको मे से अधिकाश लोग अग्रेजी भाषा के जानकार थे, संस्कृत से उनका कोई सम्बन्ध नही था। रस का मूल सम्बन्ध सस्कृत भाषा से था। यदि ये लोग कभी गम्भीरता से बैठकर रस और उसके विभिन्न पक्षो पर चिन्तन-मनन करते तो निश्चित रूप से इन्हे यह मानना पडता कि रस शब्द चाहे पुराना हो किन्तु उसकी प्रक्रिया और प्रयोग के अग चिरन्तन हैं। नाम चाहे बदल जाये लेकिन उसका कार्य कभी नही बदल सकता। रस का अर्थ है- **मन को अच्छा लगने वाला** या यो कहे कि किसी रचना मे निहित उसका **सौन्दर्य** और उस **सौन्दर्य की अभिव्यक्ति** की प्रक्रिया।

नव चेतनावादी वर्ग के लोगो की बुद्धि जैसे-जैसे समय के साथ प्रौढ होती गई उनके अनुभव और दृष्टिकोण मे अन्तर आने लगा उन्होने पुन रस की सत्ता को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। अब पुन वह समय आ गया है कि रस का महत्व लोग मानने लगे हैं।

इधर भारतीय पुरातन सस्कृति के प्रति पुन सारे देश मे जागरण की लहर दौड चुकी है। लोगो की मानसिकता मे बहुत अन्तर उत्पन्न हो गया है। अब लोग विदेश की आयातित परम्पराओ से ऊब कर भारत की पुरातन स्वर्णिम सम्पदा से जुडने लगे हैं। ऐसी स्थिति मे रस का महत्व पुन प्रकाशित हो उठा है।

जैसा पहले की कहा जा चुका है कि रस उसके विकास की कहानी और उसके मानसिक आस्वादन की प्रक्रिया देशकाल स मुक्त हैं। यह मानवीय सभ्यता के ऐसे शाश्वत मूल्य हैं जो सदैव अजर-अमर रहेगे। जैसे मनुष्य को भूख सदैव लगती रही है और आगे भी हमेशा लगती रहेगी उसी तरह मनुष्य को मानसिक आनन्द की भूख सदा लगती रही है आगे भी लगती रहेगी और मानसिक भूख को मिटाने वाला माध्यम रस रहा है। उसके नाम और रूप चाहे किसी युग मे बदल जाये पर उसकी सत्ता का लोप नही हो सकता।





करुण

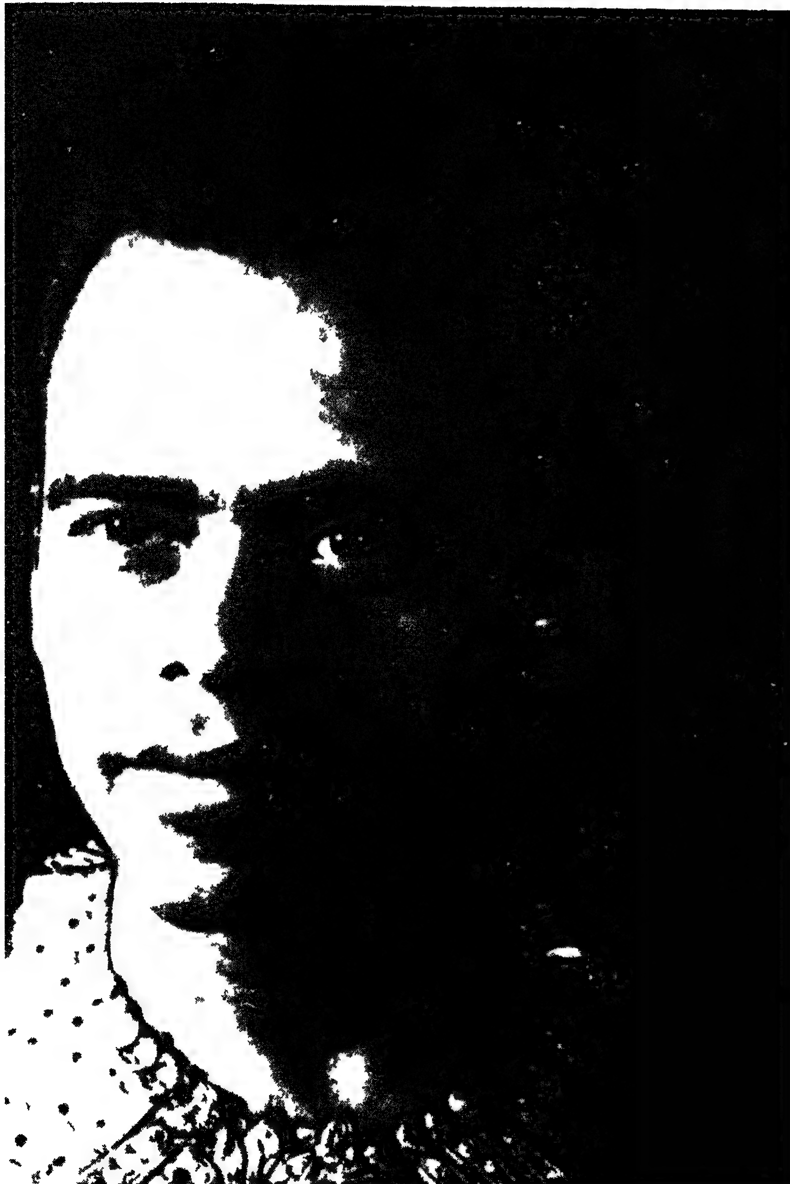
इस सारे वैचारिक आन्दोलन की सबसे बडी कमी यह थी कि इस प्रबुद्ध वर्ग ने कभी भी गम्भीरता से रस पर विचार करने की चेष्टा नही की। नये युग के प्रवर्तको मे से अधिकाश लोग अग्रेजी भाषा के जानकार थे, सस्कृत से उनका कोई सम्बन्ध नही था। रस का मूल सम्बन्ध सस्कृत भाषा से था। यदि ये लोग कभी गम्भीरता से बैठकर रस और उसके विभिन्न पक्षो पर चिन्तन-मनन करते तो निश्चित रूप से इन्हे यह मानना पडता कि रस शब्द चाहे पुराना हो किन्तु उसकी प्रक्रिया और प्रयोग के अग चिरन्तन हैं। नाम चाहे बदल जाये लेकिन उसका कार्य कभी नही बदल सकता। रस का अर्थ है- **मन को अच्छा लगने वाला** या यो कहे कि किसी रचना मे निहित उसका **सौन्दर्य** और उस **सौन्दर्य की अभिव्यक्ति** की प्रक्रिया।

नव चेतनावादी वर्ग के लोगो की बुद्धि जैसे-जैसे समय के साथ प्रौढ होती गई उनके अनुभव और दृष्टिकोण मे अन्तर आने लगा उन्होने पुन रस की सत्ता को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। अब पुन वह समय आ गया है कि रस का महत्व लोग मानने लगे हैं।

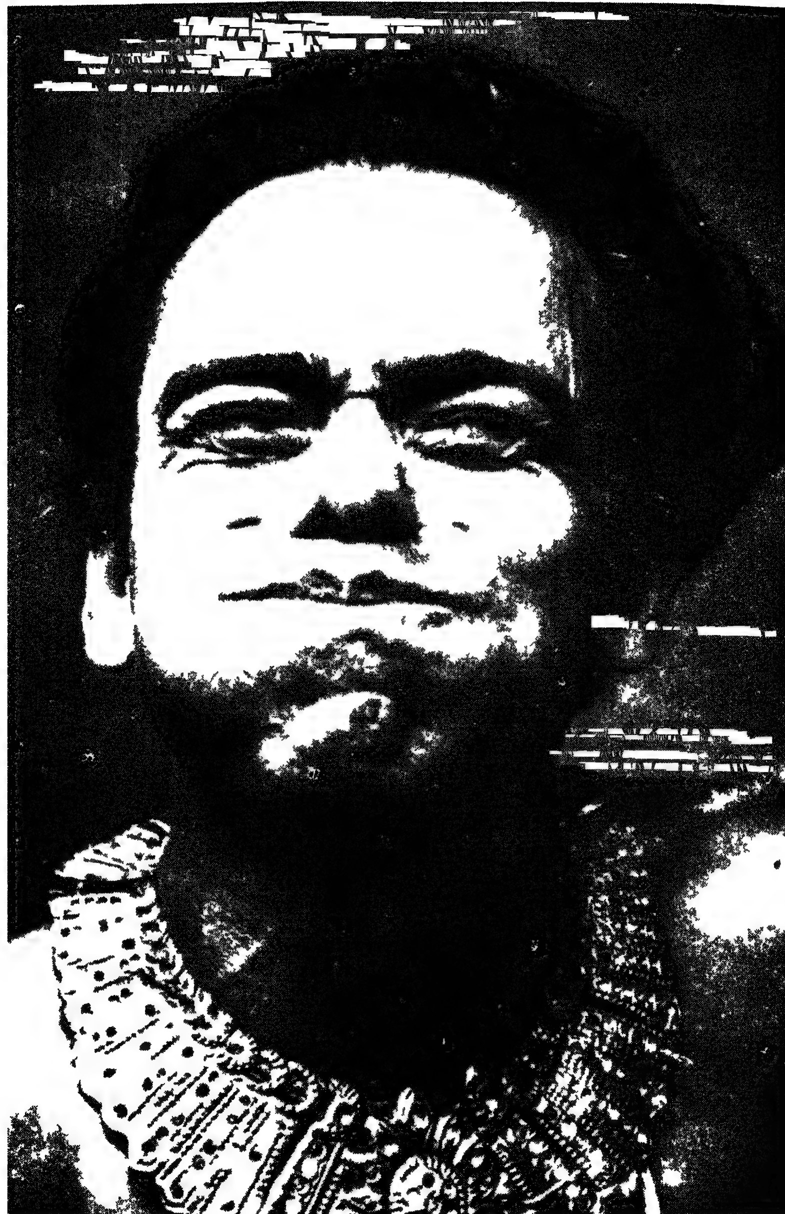
इधर भारतीय पुरातन सस्कृति के प्रति पुन सारे देश मे जागरण की लहर दौड चुकी है। लोगो की मानसिकता मे बहुत अन्तर उत्पन्न हो गया है। अब लोग विदेश की आयातित परम्पराओ से ऊब कर भारत की पुरातन स्वर्णिम सम्पदा से जुडने लगे हैं। ऐसी स्थिति मे रस का महत्व पुन प्रकाशित हो उठा है।

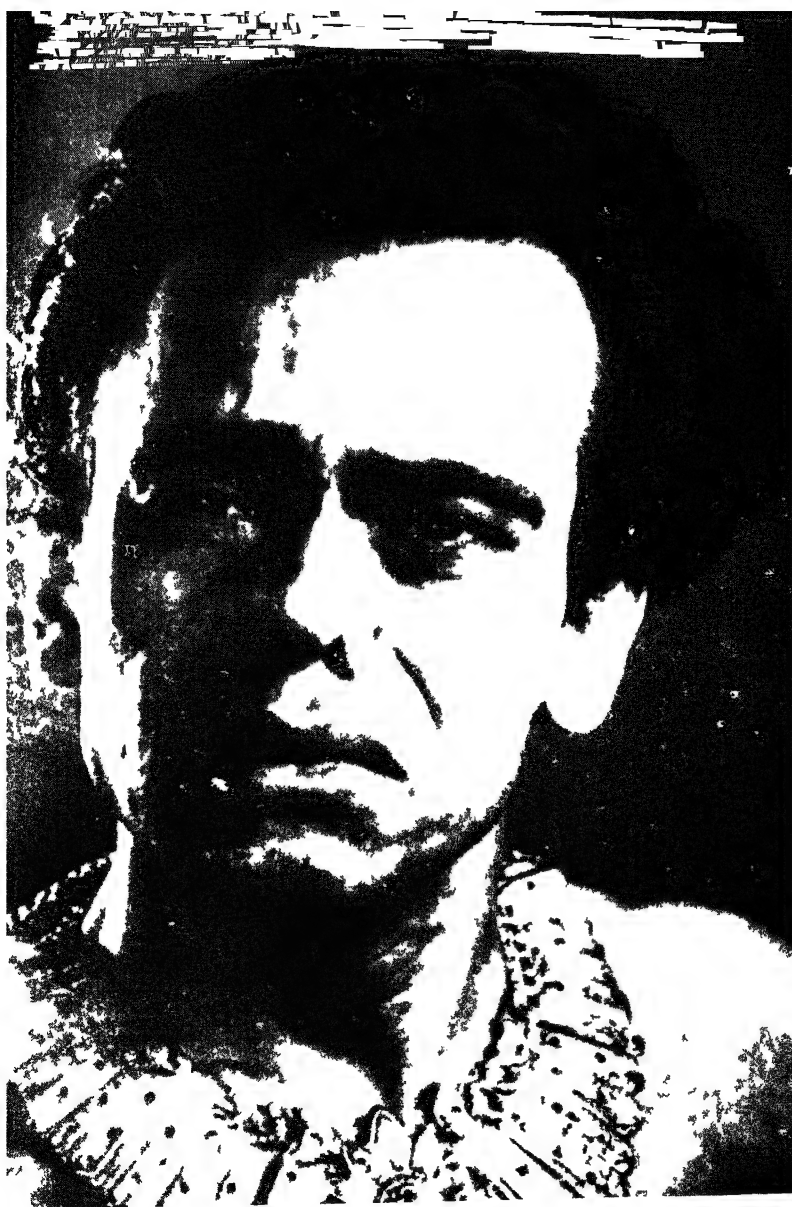
जैसा पहले की कहा जा चुका है कि रस उसके विकास की कहानी और उसके मानसिक आस्वादन की प्रक्रिया देशकाल से मुक्त हैं। यह मानवीय सभ्यता के ऐसे शाश्वत मूल्य हैं जो सदैव अजर-अमर रहेगे। जैसे मनुष्य को भूख सदैव लगती रही है और आगे भी हमेशा लगती रहेगी उसी तरह मनुष्य को मानसिक आनन्द की भूख सदा लगती रही है आगे भी लगती रहेगी और मानसिक भूख को मिटाने वाला माध्यम रस रहा है। उसके नाम और रूप चाहे किसी युग मे बदल जाये पर उसकी सत्ता का लोप नही हो सकता।

रस



श्रृंगार





करुण



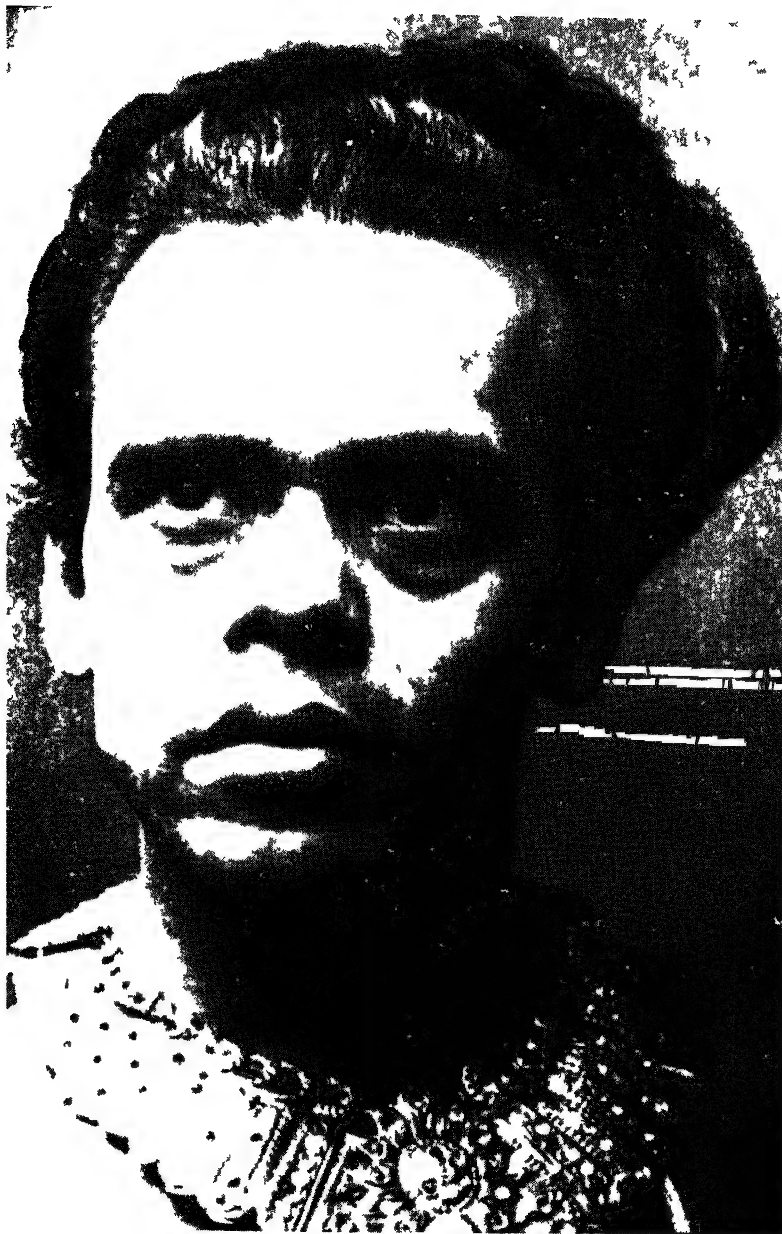


वीर





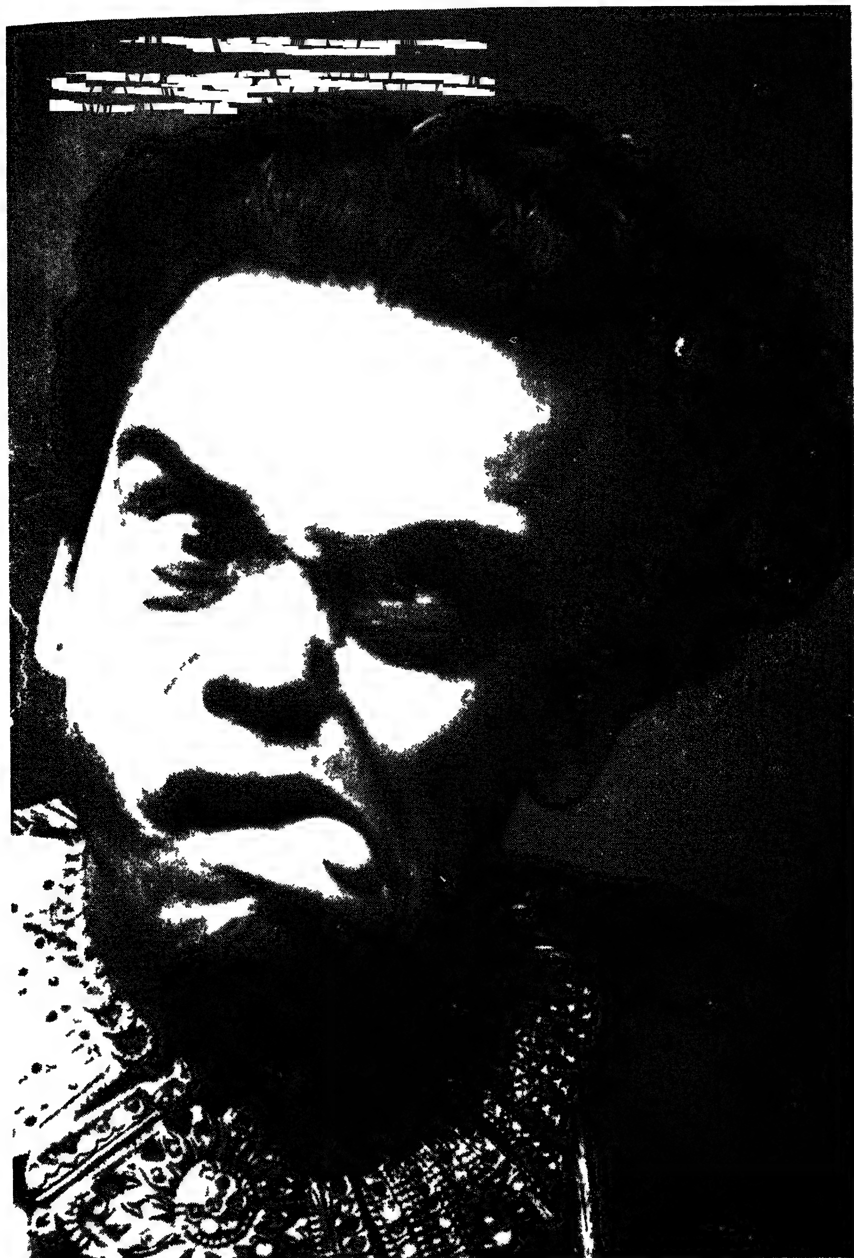
वीर



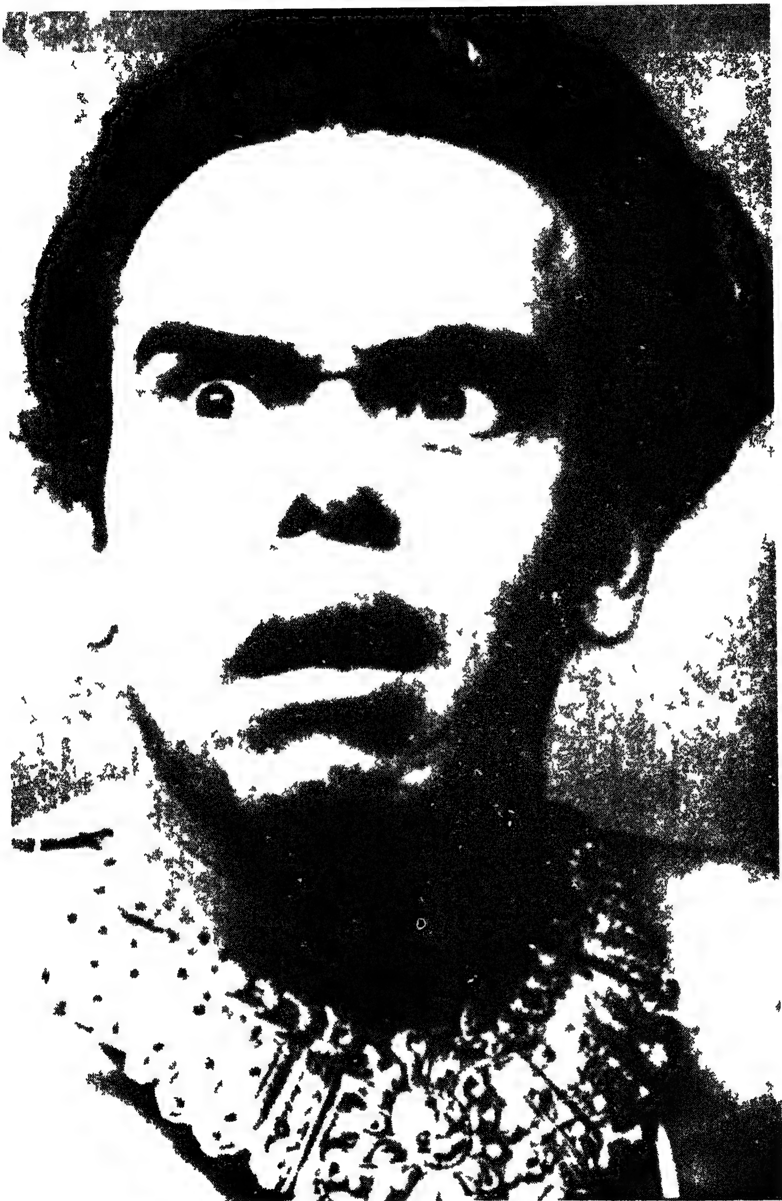
वीर



रौद्र



बीभत्स



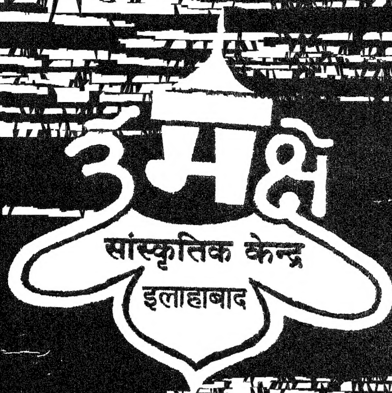
भयानक



अद्भुत



अद्भुत



PRESENTED BY

North Central Zone Cultural Centre

ALLAHABAD 211001